॥ श्रीः ॥

अध्यात्मरामायणान्तर्गता-

रामगीता ।

कर्पूरस्थलनिवासिश्रीपंडितश्रीरामगुजरातीब्राह्मण-
कृत-अनुवाद-पदप्रकाशिका-टीकासहिता ।

कर्पूरस्थलनिवासिदैवज्ञ (शौरि) दुनिचंद्रात्मज

पंडितविष्णुदत्तकृत-

विषमपदव्याख्यानसहिताच ।

श्रीपंडितरामनाथशास्त्रिभिः संशोधिता ।

सा च

मुम्बय्यां

श्रीकृष्णदासात्मजाभ्यां

गंगाविष्णु, खेमराजाभ्यां

स्वकीये "श्रीवेङ्कटेश्वर" मुद्रायन्त्रालये मुद्रिता ।

संवत् १९४७ शके १८१२

ह्रीं श्रीं क्लीं

[illegible] (ह) तेजस (र) में [illegible] करने से
तिसमें भगवती (ई) में लाया व्योम बिन्दु (०) मि
लावै [illegible] "ह्रीं" बीजोच्चार करके॥
[illegible] (श) [illegible] (र) के ऊपर आरोहण
करके तिसमें वामनेत्र (ई) बिन्दु अनुस्वार मि
लाने से दूसरा मंत्र "श्रीं" होता [illegible]
[illegible] (क) [illegible] (र) ऊपर इसमें
[illegible] (ई) और अनुस्वार के संयोग
करके [illegible] क्लीं बीज [illegible] लिये सुख
[illegible] ॥ [illegible] हैं॥

श्रीतत्सत्

उपोद्घात।

श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीजानकीवल्लभो जयति ॥

हेरम्बं शारदां शंभुं रामं सीतासमन्वितं ॥
सौमित्रिं सानुजं भरतं प्रणमामि मुहुर्मुहुः ॥ १ ॥

दोहा—गुरुपदपद्मपराग शुभ, शिर धर पाय प्रसाद ।
रघुवरसीताको करौं, मतिअनुहर अनुवाद ॥

यद्यपि इस परमपवित्र पुस्तक श्रीरामगीता उपर अनेक तिलकसंस्कृत तथा भाषामै हुये तथापि ऐसा कोई तिलक नहि-भया जो अल्पबुद्धियोंके समझनेयोग्य होवे और अक्षरार्थ औ भावार्थ दोनो सुगमरीतिसे जाणेजाई ॥ इस निमित्त यह दासानुदासपदपद्म श्रीरघुनन्दनस्वामीजीका श्रीरामदास श्रीरामगीतापर प्रसिद्धभाषामें तिलक करताहै ॥ श्रीः ॥ इसटीकामें यह रीतिहै प्रथम मूलश्लोक तत्पश्चात् भिन्न २ पदोंके अर्थ तत्पश्चात् अनुवादसमुच्चय और जहाँ संस्कृत पद लिखा जावेगा तहाँ उस्का अर्थ दो अर्धकपालके चि-न्हमे अवश्य अर्थ लिखाजावेगा और जिस स्थान विशेषार्थका प्रयोजनहै वहभी लिखाजावेगा नाम इस रामगीताकी टीका-का (रामगीतापदप्रकाशिका) है ॥ इत्यलम् ॥

करपूरस्थलनिवासी—पंडित श्रीरामदास

गुजरातीद्विज ।

विज्ञप्तिः ।

यद्यपि रामगीतापर पदप्रकाशिका टीका अत्युत्तम भईहै तथापि इस टीकामें जो २ विशेष आवश्यकता है वह सविस्तृतकर और वेद वेदांगदर्शन धर्मशास्त्रादि द्वारा प्रमाणोंसे दृढकर विषमपदव्याख्या नाम टीका यथाबुद्धि करी है इस्मे जो अशुद्ध हो वह सत्पुरुषोंने शुद्धकरलेना चाहिये ॥

प्रार्थना.

यदशुद्धमसम्बद्धमज्ञानाच्च कृतं मया ।
विद्वद्भिः क्षम्यतां सर्वं बालत्वादयमञ्जलिः ॥

कर्पूरस्थलनिवासि–दैवज्ञदुनिचंद्रात्मज–
पं॰विष्णुदत्तशर्म्मा (शोरी)

अथ रामगीतामाहात्म्यं ।

ॐश्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ अध्यात्मरामायणोक्तं

श्रीरामगीतामाहात्म्यं लिख्यते ॥

श्रीरामगीतामाहात्म्यं कृत्स्नं जानाति शंकरः ।
तदर्द्धं गिरजा वेत्ति तदर्द्धं वेद्म्यहं मुने ॥ १ ॥
तत्ते किंचित् प्रवक्ष्यामि कृत्स्नं वक्तुं न शक्यते ।
यत् ज्ञात्वा तत्क्षणात् लोकश्चित्तशुद्धिमवाप्नुयात् ।
श्रीरामगीता यत्पापं न नाशयति नारद ।
तन्न नश्यति तीर्थादौ लोके क्वापि कदाचन ॥ ३ ॥
तन्न पश्याम्यहं लोके मार्गमाणोपि सर्वदा ।
रामेणोपनिषत्सिंधुमुन्मथ्योत्पादितां मुदा ॥ ४ ॥
लक्ष्मणायार्पितां गीतासुधां पीत्वामरो भवेत् ।
जमदग्निसुतः पूर्वं कार्तवीर्यवधेच्छया ॥ ५ ॥
धनुर्विद्यामभ्यसितुं महेशस्यांतिकेवसत् ।
अधीयमानां पार्वत्या रामगीतां प्रयत्नतः ॥ ६ ॥
श्रुत्वा गृहीत्वाशु पठन् नारायणकलामगात् ।
ब्रह्महत्यादिपापानां निष्कृतिं यदि वांछति ॥ ७ ॥
श्रीरामगीतामात्रं तु पठित्वा मुच्यते नरः ।
दुःप्रतिग्रहदुर्भोज्यदुरालापादिसंभवं ॥ ८ ॥
पापं यत्कीर्तनात् सद्यो रामगीता विनाशयेत् ॥
शालग्रामशिलाग्रेच तुलस्यश्वत्थसंनिधौ ॥ ९ ॥

यतीनां पुरतस्तद्वद्रामगीतां पठेत्तु यः ॥
स तत्फलमवाप्नोति यद्वाचोऽपि न गोचरं ॥ १० ॥
रामगीतां पठेद्भक्त्या यः श्राद्धे भोजयेद्द्विजान् ॥
तस्यैते पितरः सर्वे यांति विष्णोः परं पदम् ॥ ११ ॥
एकादश्यां निराहारो नियतो द्वादशीदिने ॥
स्थित्वाऽगस्त्यतरोर्मूले रामगीतां पठेत्तु यः ।
स एव राघवः साक्षात् सर्वदेवैश्च पूज्यते ॥ १२ ॥
विना ज्ञानं विना ध्यानं विना तीर्थावगाहनं ।
रामगीतां नरोऽधीत्य अनंतफलमश्नुते ॥ १३ ॥
बहुना किमिहोक्तेन शृणु नारद तत्त्वतः
यस्य विज्ञानमात्रेण वांछितार्थफलं लभेत् ॥ १४ ॥

इति श्रीअध्यात्मरामायणोक्तश्रीरामगीतामाहात्म्यं संपूर्णम् ॥ श्रीः ॥

श्रीकृष्णदासात्मज गंगाविष्णु, खेमराज
श्रीवेंकटेश्वर छापखाना (मुंबई.)

॥ श्रीः ॥

अथ

श्रीरामगीताप्रारम्भः।

श्रीमहादेवउवाच

मूलम्।

ततो जगन्मंगलमंगलात्मना
विधाय रामायणकीर्तिमुत्तमाम्।
चचार पूर्वाचरितं रघूत्तमो
राजर्षिवर्य्यैरपि सेवितं यथा ॥ १ ॥

पदप्रकाशिका—(ततः) तिसके पीछे (जगन्मंगलमंगलात्मना) जगतके मंगलका मंगलस्वरूपने (विधाय) विधानकरके (रामायणकीर्तिम्) रामायणके यशको (उत्तमां) श्रेष्ठको (चचार) आचरणकिया (पूर्वं) प्रथम (आचरितं) आचरणकियेको (रघु उत्तमः) रघुकुलमे उत्तम (राजर्षिवर्य्यैः) राजर्षियोमें श्रेष्ठोने (अपि) निश्चयकर्के (सेवितं) सेवनकियेको (यथा) जैसे ॥ १ ॥

अनुवादसमुच्चय—महादेव कहेहै हे पार्वति! तिसके अनंतर (पीछे) जगत्के मंगलका मंगलस्वरूप रघुवंशप्रधान (रघुवंशमे श्रेष्ठ) श्रीरामचंद्रने उत्तमरामायणकीर्ति अर्थात् राव-

णादिके वधद्वारा अपना यश विस्तार करके प्राचीन ककुत्स्थआ दि राजायोंकें सेवित धर्मोंका आचरणकिया ॥ ३ ॥

विषमपदी--श्रीः ॥ ओंनमो गणेशाय ॥
ससीतं सानुजं रामं प्रणम्य च गजाननं ।
नृगिरा रामगीतायाः स्फुटं भाष्यं समारभे॥ १ ॥
ज्ञानस्याभ्युदयः स्थानं स्थानं विद्याशिवस्यच ।
यस्मात्त्रयंच संप्राप्तं तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ २ ॥

श्रीमन्महादेवप्रणीतस्य अध्यात्मरामायणज्ञानकाण्डस्य निर्विघ्नपरिसमाप्त्यर्थं कृतं मंगलं वस्तुनिर्देशात्मकं (ग्रंथादौ मध्येंऽते च मंगलं प्रयोक्तव्यमिति स्मरणात्) ग्रंथादौ शिष्यशिक्षार्थं निबध्नाति ॥ तत इति ॥ यद्यपि पदपदार्थललितां टीकां देववाण्या देव - गुरुद्विजप्रसादात्कर्तुं समुत्सुकोऽस्मि तथापि स्पष्टप्रतिपत्त्यर्थं भाषायां विषमपदव्याख्यां सप्रमाणां कर्पूरस्थलीयगौतमान्वयालंकृतश्रीतुलसीदासात्मजदेवज्ञविद्वत्कुलावतंसश्रीदुर्निचंद्रात्मजविष्णुदत्तः (शौरि) इत्यन्वयालंकृतः करोमि । यदत्राशुद्धसंवर्द्धतत् प्रचुरपरगुणानंदिभिर्विद्वद्वर्य्यैः क्षंतव्यमित्यभ्यर्थये ॥ शं॥ इहां वंशस्था नाम छंद है उस्का लक्षण पिंगलसूत्रमें यथा-(वंशस्था ज्तौ ज्रौ) इस्का आशय ले वृत्तरत्नाकरमेभी लिखा है (जतौ तु वंशस्थमुदीरितं जरौ) अर्थ । जगण । ऽ । तगण ऽऽ । फिर जगण । ऽ । और रगण ऽ । ऽ इसतरह चार गण होवे वह वंशस्थ नाम छंद होता है १२ अक्षरका ॥ इंद्रवशा तोटक श्रीपुट. इत्यादि बहुत भेदहै १२ अक्षरछंदके है यहां जिसका संभव हो वो वहां जानणा ॥ (।) यह चिन्ह ह्रस्वका है और (ऽ) यह दीर्घका है यह दो सर्वत्र जानने॥ और अलंकारके दो भेद है एक अर्थालंकार जैसे स्वभावोक्ति उपमा रूपक आदि दूसरे शब्दालंकार जैसे अनुप्रास यमकादि होतेहै तो इहा अनुप्रासालंकारहै लक्षण जैसे-(शब्दसाम्यमनुप्रासः) अर्थ- जहां शब्दकी साम्यता हो-

से वह अनुप्रास होताहै जैसे तकी तके साथ मकी मके साथ इस्के भी पांच भेदहैं विस्तरके भयसे नहि लिखेंजाते। इति विषमपद व्याख्या ॥ १ ॥

मू०–सौमित्रिणा पृष्ट उदारबुद्धिना
रामः कथाः प्राह पुरातनीः शुभाः।
राज्ञः प्रमत्तस्य नृगस्य शापतो
द्विजस्य तिर्यक्त्वमथाह राघवः ॥ २ ॥

पद०(सौमित्रिणा) लक्ष्मणकरके (पृष्ट) पूछेहुये (उदारबुद्धिना) उदारबुद्धिवाले करके (रामः) श्रीरामचंद्रजी (कथाः) कथाको (प्राह) कहतेभये (पुरातनीः) पुराणी (शुभाः) श्रेष्ठ (राज्ञः) राजाको (प्रमत्तस्य) प्रमादीको (नृगस्य नृगराजाको)शापतः (शापसे) द्विजस्य (ब्राह्मणके) तिर्य्यक्त्वं (तिर्य्यक्‌योनि अर्थात् किरलेकी देह) अथाह एसे कहतेभये (राघवः) श्रीरामचंद्रजी ॥

अनु०–उदारबुद्धि अर्थात् आर्जवयुक्तचित्त लक्ष्मणकर्कें पूछेहुये श्रीरामचंद्रजी पुरातीन शुभ कथा कहतेभये और जो २ राजालोग प्रमादयुक्त हुयेथे उनको जो२उस प्रमादका फल भया वहभी सुनावतेभये। अर्थात् राजा नृगको किंचित् प्रमाद होनेसे किरलेकी योनि प्राप्तहुई ॥ २ ॥

विषम०–श्रीमन्महायशस्वी नृगराजा प्रतिदिन बहुतवस्त्रालंकारयुक्त धेनु (गौउ) देताथा एक दिन प्रमादसे संकल्पित गौउ ना समझकर और ब्राह्मणको पुनः दी लेनेके भीतर उन दो ब्राह्मणोका

संवाद भया वह कहे की हमारी दूसराभी कहे की मैने राजासे लीहै प्रथम जिस्कि थी वह राजाके पास जा करके कहनेलगा की अै राजन् तुमने प्रमादसे मुझकी गौऊ अन्यको दी और तुमने जानकर संवाद देखा इससे हम तुमको शाप देतेहै किरले- की योनीको प्राप्तहो इस प्रमादका फलभोग (राजाकी वेनती ना सुनता शीघ्र अपने स्थानको गया ॥ यह गाथा श्रीमद्भागवत दशम स्कंध उत्तरखंडमे लिखी है विस्तारसै)॥ इहाँ इंद्रवंशा नानाम छंद है (यथा-स्यादिन्द्रवंशा ततजै रसंयुतैः) पिंगलमेभी लिखाहै (इंद्रवंशा तौ ज्रौ) अर्थ यहाँ तगण दो होवे ऽऽ। १ऽऽ।२ और जगण । ऽ । रगणऽ। ऽ होवे तो इंद्रवंशा छंद होताहै॥ २ ॥

मू०—कदाचिदेकान्तमुपस्थितं प्रभुं
रामं रमालालितपादपंकजं ॥
सौमित्रिरासादितशुद्धभावनः॥
प्रणम्य भक्त्या विनयान्वितोब्रवीत् ॥ ३ ॥

पद०— (कदाचित्) एक समय (एकांतमुपस्थितं) एकेले बेठेहुयेको (प्रभुं) स्वामीको (रामं) श्रीरामचंद्रजी को(रमालालितपादपंकजं) रमा अर्थात् जानकीजीकर्के सेवितहै चरणकमल जिसके (सौमित्रिः) लक्ष्मणजी (आसादित शुद्धभावनः) ग्रहणकीहै निर्मलविचार जिसने (प्रणम्य) प्रणामकर (भक्त्या) भक्तिसे (विनयान्वितः)नम्रताकरके युक्त (अब्रवीत्)कहताभया ॥ ३ ॥

अनु०—एकसमये एकांतमै किसीस्थान बैठेहुये श्रीरामचंद्रजीको सीताजीकरके सेव्यमान चरणकमल जिस्के ऐसे को

श्रीलक्ष्मणजी शुद्धभावनावाले प्रणामकर भक्तिसे विनयपूर्वक कहते भये॥ ३ ॥

विषमपदव्याख्या–तात्पर्य यह है कि इस सर्गमे लक्ष्मणजी रामचंद्रको गुरुभावनासे (जिज्ञासाकी इच्छासे) अर्थात् मुक्तिकी प्राप्तिके लिये शिष्य बनकर शुद्ध भावनासे राग द्वेष क्रोधादिकोंको त्याग पूछते भये ॥ यदि कोई शंकाकरे कि भ्राता मानकर पुछते है तो (शुद्धभावनः) इसका अर्थ नहि बनता शुद्धभावनासे गुरुजीकोही पूछाजाता है नहि पिता भ्राता मातादि संबंधियों को इन्मे वात्सल्यादिभावसे न्यूनाधिक रागादिकोंका संभव होताहै और आगे दोश्लोकसे परमात्मा समझ स्तुतिपूर्वक शरणागतिको मोक्ष इच्छासे प्राप्त होताहै ॥ इहा वंशस्थानाम च्छंद है ॥लक्षण और अर्थ पीछे लिखाहै ॥ ३ ॥

मू०–सौमित्रिरुवाच ॥

त्वं शुद्धबोधोसि हि सर्व देहिना-
मात्मास्यधीशोसि निराकृतिः स्वयं॥
प्रतीयसे ज्ञानदृशां महामते
पदाब्जभृंगाहितसंगसंगिनाम्॥ ४ ॥

पदार्थ–(त्वं) तुम (शुद्धबोधोसि) शुद्धज्ञानस्वरूप हो (हि)जिस कारणसे (सर्वदेहिनां) सर्वदेहवालोका (आत्मासि)अंतर आत्मा हो (अधीशोसि) ईश्वर हो (निराकृतिःस्वयं) आप आकृतिरहित हो अर्थात् तुमारा स्वरूप नहि(प्रतीयसे) प्रतीत होताहै (ज्ञानदृशां)ज्ञानदृष्टिवालोंको (महामते !) हेमहान् बुद्धिवाले (पदाब्जभृंगाहितसंग

संगिनां)तुमारे चरण कमलोमै भ्रमरकी न्याई प्रीतिहै जिन्हो को तिनके जो संगिहै ॥

अनुवाद०—हेरामचंद्रजी !तुम निर्मलज्ञानस्वरूप हो और सर्वदेहवालोके अंतरात्मा हो और ईश्वर हो वास्तवसे तुम रूपरहित हो और ईश्वर हो अपने भक्तोंकेसाथ संगकरनेवालोको ज्ञानदृष्टिसे दिखाई देतेहो ॥ ४ ॥

विषमपदी—इसस्थान श्रीरामचंद्रको निर्गुनब्रह्मरूपतासे लक्ष्मणजीने स्तवनाकिया इसमे प्रमाण यह है॥ याज्ञव०स्मृ०अ० ३ स्मृति ६९ यथा "निमित्तमक्षरः कर्त्ता बोद्धा ब्रह्म गुणी वशी । अजः शरीरग्रहणात् स जात इति कीर्त्यते" इति स्मरणात् अर्थ यह है कि हे परमेश्वर ! तुम सर्वका कारण नही नाशहोनेवाला कर्त्ता सृष्टिका ज्ञानरूप गुण शौर्य्यादियुक्त जितेंद्री और सवको वश्यकर्नेवाला जन्मरहित ऐसा तुम शरीरको धारणकर जात (उत्पन्नहुआ) कहा जाता है ॥ और ईश्वरका लक्षण (पातंजल दर्शन) योगशास्त्रमे लिखा है समाधिपादे २९ सूत्रं "क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ॥"क्लिश्यंतीति क्लेशाः अअर्थात् जो दुःखको उत्पन्न करे और कर्म इन्का जो विपाक (विपच्यंते इति विपाकाः) विशेष करके पाकफल आशय वासना इन्करके अपरामृष्ट अर्थात् तीनोकालमे जो रहितहै (ईशनशीलःईश्वरः) अर्थात् इच्छामात्रसे जगतके उद्धारकर्नेमे जो समर्थ है ॥ इहांइंद्रवंशाछंदहै ॥ ४ ॥

मू०—अहं प्रपन्नोस्मि पदाम्बुजं प्रभो
भवापवर्गं तव योगिभावितं ।
यथांजसाज्ञानमपारवारिधिं

सुखं तरिष्यामि तथानुशाधि मां ॥ ५ ॥

प० (अहं)मै (प्रपन्नोस्मि)शरणागतभयाहुं (पदांबुजं) चरणकमलोको (प्रभो ।) हेस्वामि (भवापवर्गं) संसारसे मोक्षकरनेवाले चरणोको (तव) तेरे (योगिभावितं) योगिजनोको जो भावित अर्थात् अच्छे लगतेहै (यथा) जैसे (अंजसा) शीघ्र (अज्ञानमपारवारिधिं)अविद्यारूप अपार समुद्रको (सुखं तरिष्यामि) सुखसे तरजाऊं (तथा) तेसे (अनुशाधि मां) शिक्षाकरो मुझे ॥ ५ ॥

अनुवाद०—हेप्रभो। तुमारे चरणकमलोकी शरणको मे प्राप्तभयाहु कैसे तुमारे चरण जो संसारसे मोक्ष देनेवाले और योगिजन जिसका ध्यान करतेहै जिस प्रकार इस अविद्यारूप समुद्रके पारको हम विनाखेदसे पार होवे तैसे हमको शिक्षाकरो ॥ ५ ॥

विषमपदी—इसमे शंका यह है कि प्रथम रामचंद्रको लक्ष्मणजीने वनमे सहायतादी और क्लेशादि रामचंद्रके साथ भोगे और रामजीनेभी विलाप पितृस्नेहादि सब यथावत मनुष्यके काम कीये अब फिर लक्ष्मणजी ब्रह्मरूप जान और गुरु मान शिष्य वन पूछते है यह आश्चर्य है इसमे उत्तर यह कहाजाता है कि रामचंद्रपरमात्मा ब्रह्म है परंतु लोकोके उपकारके लिये मायोपहित होकर पूर्वोक्त सब काम किये परंतु किसी किसी स्थानमे समुद्रबंधनादि वालिखरदूषणादि वध परमेश्वरता प्रगटकरनेंके वास्ते दिखाये वह पिछली आश्चर्यमयी वार्ताको जान लक्ष्मणजी सब काम के पीछे मुक्तिके साधन ज्ञानके लिये फिर पूर्व ब्रह्मरूपसे स्तवनकरते है ॥ और इसमे प्रमाण यह है ॥ भरतमुनि नाटकप्रकरणमें ना

यकोमे रामचंद्रको धीरोदात्त और दिव्याऽदिव्यनायक मानतेहै लक्षण जैसे "अविकत्थनः क्षमावानतिगंभीरो महासत्वः। स्थेयान्निगूढमानो धीरोदात्तो दृढव्रतः कथितः ॥दिव्योपि आत्मनि नराभिमानी दिव्याऽदिव्यः श्रीरामचंद्रः॥ "यह परमेश्वरहो जो नरका अभिमान अपनेमें जाने वोह दिव्यादिव्य होता है मुझको सब लोक परमेश्वर ना समझे इस आशयसे इत्यलं। यहां वंशस्थानाम छंदहै ॥ ५ ॥

मू० श्रुत्वाथ सौमित्रिवचोखिलं तदा
प्राह प्रपन्नार्तिहरः प्रसन्नधीः ॥
विज्ञानमज्ञानतमोपशांतये
श्रुतिप्रपन्नं क्षितिपालभूषणः ॥ ६ ॥

प०—(श्रुत्वा) श्रवणकरके (अथ) इसके अनंतर (सौमित्रिवचः) लक्ष्मणकी वाणी (अखिलं) संपूर्णको (तदा) तिसकालमे (प्राह) कहतेभये (प्रपन्नार्तिहरः) शरणागतके दुःखनाश करनेवाले (प्रसन्नधीः) प्रसन्नबुद्धिवाले (विज्ञानं)विशेष ज्ञानको (अज्ञानतमोपशांतये) अज्ञानरूपी अंधकार की शांतिवास्ते (श्रुतिप्रपन्नं) वेदयुक्त (क्षितिपालभूषणः)राजाओमे भूषणरूप रामचंद्र ॥ ६ ॥

अनु०—लक्ष्मणके वचनको सुनकर शरणागत जो पुरुष उनके दुःख नाशकरनेवाले प्रसन्न मनवाले सर्व राजाओंमें अलंकारभूत रामचंद्रजी अज्ञानरूप अंधकारके नष्टकरनेके लिये श्रुतियुक्त ब्रह्मज्ञानका उपदेशकरनेलगे ॥ ६ ॥

विषमपदी—इस श्लोकसे पूर्व कथन जो गुरुभाव रामचंद्रमे सिद्धभया (अज्ञानके नाशलिये कहतेहै) इसवाक्यसे ॥ इहा रामचंद्रका विशेषण (आर्तिहरः) लिखाहै ॥ इससेंयह ज्ञान होना चाहिये कि (आर्ति) अर्थात पीडाके नाश कर्नेवाला अबपीडाके भेद कहतेहे कि प्रथम पींडा तीनप्रकारकीहै १— अध्यात्मक २— आधिभौतिक ३—आधिदैविक इनभेदोसे ॥ इन्का अर्थ यह है कि जो पीडा आत्मासंवंधीहो वह आध्यात्मक कहीजातीहै इसकेभी दो- भेदहै पहिली१ (शारीरक)अर्थात शरीरका दुःख और दूसरी (२मानसिक)अर्थात मनकी पीडा ॥ शरीरकी पीडा (वात १ पित्त २ कफ३) इन तीन धातुकींजो विषमता कि घटना वधना इससे जो भई हुई पीडा ॥ मनकी पीडा यह है की (काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, ईर्ष्या,विषाद, संतापादि) द्वारा जो मनको अतिशय दुःखित करतीहै (इन दोनोको शरीरांतर्गत होनेसे अध्यात्मिक पीडा कहाजाताहै ॥ जो वाहारसे होनेवाला दुःख है वोह आधिभौतिक) और आधिदैविकसे कहा जाताहै ॥ आधिभौतिक जैसे (मनुष्य. पशु. पक्षि सर्प पाषाण पतन निमित्त कारणइस्मेभूतोको होनेसे आधिभौतिक कहाजाताहै ॥ देवतासंबंधि दुःखको (आधिदैविक) कहतेहै जैसेविद्याधर अप्सरा यक्ष राक्षस गंधर्व किन्नर विनायक पूतनादि नवग्रह पिशाच गुह्यक सिद्ध भूत प्रेत दैत्य दानवादि देवताद्वारा जो होवे ॥ इतने भेद प्रत्युपभेदोसे आर्ति पीडा कहीजातीहै ॥ इस पीडाको विना परब्रह्मपरत्मासे कौन पुरुष दूर करसक्ताहै ॥ इसलियेसे प्रपन्नार्तिहर इस विशेषणद्वार परब्रह्म परमात्मा शुद्ध बुद्ध निरभिमान निराकार परम पुरुष रामचंद्रजीको शुद्धमन होकर लक्ष्मणजी पूछतेहै और शिष्यभावनासे रामचंद्रजी लक्ष्मणको कहतेहै ॥ यह भेद आगे बडे काम आवेगें इसलिये भक्तजनोने अच्छीतरह समझने गुरुद्वारा चाहिये इन्मेभी बहुत भेद है विस्तारके भयसे नहि लिखे जाते है ॥ इति ॥ ६ ॥ इहा वंशस्था छंद है-

मू० श्रीरामचंद्र उवाच॥

आदौ स्ववर्णाश्रमवर्णिताः क्रियाः
कृत्वा समासादितशुद्धमानसः ॥
समाप्य तत्पूर्वमुपात्तसाधनः
समाश्रयेत्सद्गुरुमात्मलब्धये ॥ ७ ॥

प०—(आदौ) पहिले (स्व) अपने (वर्ण) ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र(आश्रम) ब्रह्मचर्य गृहस्थ वानप्रस्थ संन्यासा (वर्णिताः क्रियाः) वर्णितकरी क्रियाको (कृत्वा) करके (समासादित) ग्रहणकिया (शुद्धमानसः) शुद्ध मन जिसने (समाप्य)समाप्तकरके(तत्पूर्वं) तिस्के पूर्व (उपात्तसाधनः) एकट्ठी की है साधन जिसने (सं) भलीप्रकार (आश्रयेत्) आश्रयहोवे (सद्गुरुम्)श्रेष्ठगुरुको (आत्मलब्धये) आत्माकी प्राप्तिलिये ॥ ७ ॥

अनु०—श्रीरामचंद्रजी कहतेहै कि पहिले अपने २ वर्ण तथा आश्रमके योग्य जो कर्म तिन्होको कर अंतःकर्ण शुद्धकरे फिर संपूर्ण कर्मोकी समाप्तिकर आत्मज्ञानकी प्राप्ति लिये श्रेष्ठगुरुकी शरणको प्राप्तहोवे ॥

इस श्लोकमे वर्णाश्रमके धर्म और कर्मको उपयोगी होने से संक्षेपसे वर्णाश्रमके धर्म लिखतेहै ॥

ब्राह्मणके कर्म यज्ञ १अध्ययन २दान ३करने करानेसे षट् भेद हुये ६ ।प्रथम तीनक्षत्रिय वैश्यके। ब्राह्मणकी सेवा शू-

द्रका मुख्य कर्म ॥ अब ब्राह्मणके स्वाभाविक कर्म लिखतेहै (शम)मनका एकाग्र करना (दम)इंद्रियोको वशमे स्थापनकरना (शौच)बाहर और अंतरसे पवित्रता (विज्ञान) अपने मनके निश्चयसे अनुभवद्वारा हृदयमे सर्वरूप परमेश्वरका सच्चा निश्चय होना (आस्तिक) परमेश्वरकेसद्भावमे और उस्की आज्ञामे पूरा निश्चय होना यह कर्म ब्राह्मणके स्वभावसे उत्पन्न होतेहे ॥क्षत्रीकेकर्म ॥ (शौर्य्य)युद्धमें मन स्थिर रखना (तेज) शत्रूके बली दिखाइदेना (धृति) विपतमेभी मनको स्थिररखना (दाक्षिण्य) कर्ममें शीघ्रकारिता युद्धमे ना भागना (दान) आनंदसहित धर्मसे उत्पन्न किया हुआ धन उत्तमपात्रको उत्तम देशकालमे देणा अथवा किसी दुःखीभयातुरको शरण देना (ईश्वरभाव) अर्थात् प्रजाकि रक्षावास्ते दुष्टोके मनमें दण्डदेनेकी सामर्थ्य जितलाणी यह सब कर्म क्षत्रिके स्वभावसे होतेहे॥ वैश्यके कर्म खेती करना गौ बैल पालना व्यापार करना यह वैश्यके स्वभावज है ॥ शूद्रके धर्म नम्रता और सेवा शूद्रका स्वभावज धर्म हे ॥सब वर्णोंको एकसे धर्म ॥अहिंसा सत्य ना चुराणा पवित्र रहना और यतेंद्रि रहणा दान करना दया करणी सबपर दम क्षांति करनी॥ब्रह्मचारीके धर्म गुरुकी सेवा विद्याका पढना इंद्रीजित रहना शुचिरहना अथवा सर्वत्र ब्रह्मही देखना ॥ गृहस्थीके धर्म कुलाचार धर्म अतिथि पूजन ॥वानप्रस्थीका धर्म जितेंद्री अपनी स्त्रीके साथ वा उस्की आज्ञा ले वनमे रहना अग्नीका सेवन करना आत्मतत्वका

विचार नित्य करना ॥ यतिके धर्म त्रिविध ईषणाका त्याग अर्थात् स्त्री पुत्र धन इन तीनोकी इच्छा ना होणी दंडग्रहण करना कर्मोका त्याग ब्रह्मज्ञानका होना वैराग्य सर्वसे रखना मनकी स्थिरता।परमहंसधर्म परायेको दुःख ना देणा सर्वके अच्छेमे रहना जगतको ब्रह्मरूप जानना अजपाजप करना आनंदमन रहना ॥ इत्यादि वर्णाश्रमके कर्मनिरूपण होचुके सो इन्के अनुष्ठान करनेसे अंतःकरणका मल दूर होताहै शेष रहा विक्षेप और आवरण इन्के दूर करनेका उपासना उपाय है। इसवास्ते रघुनंदनस्वामीने इस श्लोकमे(समासादितशुद्धमानसः) यह पद लिखाहै तात्पर्य यह है कि उपासनाकरके मन शुद्धकरे इहा सगुण ब्रह्मकी उपासनासे प्रयोजन है उपक्रमकी रीति तथा उपसंहारकी रीतिसे ५८ श्लोकका अर्थ प्रगट करते है जब उपासना करते २ अंतःकरणका विक्षेप दूर होजाइ तब आवरणकी निवृत्तिके अर्थ सद्गुरु आत्मदर्शीकी शरणको प्राप्तहोवे। अथ प्रथम कर्मकांड द्वितीय उपासनाकांड तृतीय ज्ञानकांड है पहिले वर्णाश्रमोंके लिये श्रुति स्मृत्युदित कर्मोको यथावत् ईश्वरार्पण करनेसे चित्तको शुद्ध अर्थात् निर्वासना करे पश्चात् उपासनासे एकाग्रमन कर समित्पाणि हो कर ज्ञानप्राप्तिवास्ते सद्गुरुका आश्रयण कर्ना चाहिये ॥ ईश्वरार्पण कर्म करनेमे दो रीति है कर्मोका अर्पण अपर फलका ॥ ७ ॥

विषमपदव्याख्या—ऊपर वर्णाश्रमप्रकरण भाषामें बहुत अ-

च्छा लिखाहै उसको दृढ करनेके लिये धर्मशास्त्रके प्रमाण लिखे जातेहैं ॥ याज्ञ० स्मृतौ प्रथमध्याये॥ १०८। ९। १०। १२। १३ श्लोक ॥ "इज्याध्ययनदानानि वैश्यस्य क्षत्रियस्य च । प्रति ग्रहोधिको विप्रे याजनाध्यापने तथा ॥ प्रधानं क्षत्रिये कर्म प्रजानां परिपालनं ॥ कुसीदकृषिवाणिज्यं पाशुपाल्यं विशः स्मृतं ॥ शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा तया जीवन् वणिग्भवेत् ॥ शिल्पैर्वा विविधैर्जीवेद्दिजातिहितमाचरन् ॥ अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिंद्रियनिग्रहः ॥ दानं दया दमः क्षान्तिः सर्वेषां धर्मसाधनं ॥ वयोबुद्ध्यर्थवाग्वेशश्रुताभिजनकर्मणां ।आचरेत् सदृशीं वृत्तिमजिह्मामशठां तथा॥" यह चारो वर्णोंके धर्म भिन्नभिन्नतथा एकहो कहेहैं॥अब ब्रह्मचारीके धर्म यथाक्रम कहतेहैं ॥याज्ञव० स्मृति १ अध्याय २६।२७।२९ ३१ ।३३ श्लोकमें – "संध्यां प्राक् प्रातरेवेह तिष्ठेदासूर्यदर्शनात् । अग्निकार्य्यं ततः कुर्यात्संध्ययोरुभयोरपि ॥ आहूतश्चाप्यधीयीत लब्धं चास्मै निवेदयेत् । हितं चास्य चरेन्नित्यं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥ दंडाजिनोपवीतानि मेखलां चैव धारयेत् । ब्राह्मणेषु चरेद्भैक्ष्यमनिन्द्येष्वात्मवृत्तये ॥ कृताग्निकार्यो भुञ्जीत वाग्यतो गुर्वनुज्ञया । आपोशानक्रिया पूर्वं सत्कृत्यान्नमकुत्सयन् ॥ मधुमांसाञ्जनो।च्छिष्टशुक्तस्त्रीप्राणिहिंसनं।भास्करालोकनाश्लीलपरिवादांश्च वर्जयेत् " ॥एक नैष्ठिक नाम ब्रह्मचारी जो आयुपर्यंत ब्रह्मचर्यको धारतेहैं उनका कर्म ॥ "नैष्ठिको ब्रह्मचारी तु वसेदाचार्यसन्निधौ । तदभावेऽस्य तनये पत्न्यां वैश्वानरेऽपि वा। अनेन विधिना देहं साधयन् विजितेंद्रियः । ब्रह्मलोकमवाप्नोति नचेह जायते पुनः ॥" अथ गृहस्थीकेधर्म । " संध्या स्नानं जपो होमो देवतानां च अर्चनं । आतिथ्यं वैश्वदेवं च षट्कर्माणि दिनेदिने"इत्यादि बहु वाक्य हैं अथ वानप्रस्थिके धर्म । याज्ञव० स्मृ०२ अ०४५।४६।४८।४९।५१। ५२।५३। "सुतविन्यस्तपत्नीकस्तया वानुगतो वनं । वानप्रस्थो ब्रह्मचारी साग्निःसोपासनो व्रजेत् ॥ अफालकृष्टेनाग्नींश्च पितृन्दे

वातिथीनापि । भृत्यांश्च तर्पयेत्श्मश्रुजटालोमभृदात्मवान् । दांत॰ त्रिषवणस्नायी निवृत्तश्च प्रतिग्रहात् । स्वाध्यायवान् ध्यानशीलः सर्वसत्वहिते रतः ॥ स्वप्याद्भूमौ शुची रात्रौ दिवा संप्रपदैर्नयेत् । स्थानासनविहारैर्वा योगाभ्यासेन वा पुनः॥ ग्रीष्मेपंचाग्निमध्यस्थो वर्षासु स्थंडिलेशयः । आर्द्रवासास्तु हेमंते शक्त्या वापि तपश्चरेत् ॥ यः कंटकैर्वितुदति चंदनैर्यश्च लिंपति । अक्रुद्धोपरितुष्टश्च शमस्तस्य च तस्य च ॥" इत्यादिकं ॥ अथ यतिधर्म ॥ या॰स्मृ॰ ३अ०५७।५८।६१।६२।६३।६४। ॥ श्लोक॥ "अधीतवेदो जपकृत् पुत्रवानन्नदोग्निमान् । शक्त्या च यज्ञकृन्मोक्षे मनः कुर्यात्तु नान्यथा ॥ सर्वभूतहितः शान्तस्त्रिदण्डिसकमण्डलुः । एकारामः परिव्रज्य भिक्षार्थं ग्राममाश्रयेत् ॥ संनिरुध्येन्द्रियग्रामं रागद्वेषौ प्रहाय च । भयं हित्वा च भूतानाममृतीभवति द्विजः ॥ कर्तव्याशेषशुद्धिश्च भिक्षुकेण विशेषतः । ज्ञानोत्पत्तिनिमित्तत्वात्स्वातंत्र्यकरणाय च ॥ अवेक्ष्यागर्भवासांश्च कर्म्मजा गतयस्तथा । आधयो व्याधयः क्लेशा जरारूपविपर्ययः ॥ भवोजातिसहस्रेषु प्रियाप्रियविपर्ययः । ध्यानयोगेन संपश्येत्सूक्ष्म आत्मात्मनि स्थितः॥ " इत्यादि ॥ यह प्रमाण क्रमपूर्वक जानलेणे ॥७ ॥

मू॰ क्रिया शरीरोद्भवहेतुरादृता
प्रियाऽप्रियौतौ भवतः सुरागिणः।
धर्मेतरौ तत्रपुनः शरीरकं
पुनःक्रिया चक्रवदीर्यते भवः ॥ ८ ॥

पद०–(क्रिया)कर्म (शरीरोद्भव)शरीरकी उत्पत्तिमें(हेतु) कारण है(आदृता)आदरपूर्वक(प्रियाप्रियौ तौ)भला बुरा अर्थात् श्रेष्ठ निषिद्ध(भवतः)होतेहैं(सुरागिणा)प्रीतिवाले पुर-

षको (धर्मेतरौ)पुण्य पाप(तत्र)तिसविषे (पुनः)फिर(शरीरकं) शरीर(पुनः)फिर(क्रिया)कर्म(चक्रवत्)चक्रकी न्याई(ईर्यते) कहतेहै(भवः)संसार ॥ ८ ॥

अनु०—आदरसे करी हुई क्रिया अर्थात् शुभाशुभ कर्म शरीरकी उत्पत्तिविषे कारण है सो काम्यकर्म यज्ञादिकविषे प्रीतिवाले पुरुषोको पाप पुण्य राग द्वेष युक्त होनेसे वारंवार जन्म कर्म होतेहै शरीर हुआ तो कर्म हुये फिर कर्मोंसे शरीर इसीतरां कुलालचक्र वा रथचक्रकी न्याई संसार होताजाताहै ॥ ८ ॥

विषमपद०—आदृता क्रियाकिआदरसे अर्थात् अहंकारको लेकर यह मै करताहै और मेराहै इस वासनासे जो कीयाजाये वह वह अवश्य भोगना पडताहै (रागिणः) अर्थात् रागद्वेषवाले पुरुषको। नहि अन्यको। रागद्वेषकालक्षण (पातंजल- योग साधनपाद सू० (सुखानुशयी रागः)(दुःखानुशयी द्वेषः)सुखसाधन राग दुख-साधनद्वेष ॥ यह लक्षणहै ॥ इनके पाकमे (१२ सूत्र) प्रमाण है। यथा (क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः) अर्थ वासनासे किये जो कर्म क्लेशमूल इस जन्म पर जन्ममे फलद्वारा कर्मका भोग जाना जाताहै जाति आयु भोगरूपी ॥ (प्रियाप्रियौ तौ भवतः सुरागिणः) इसमेप्रमाण पातंजलदर्शन साधनपादसू० १४ (ते ल्हादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्त्वात्।) अर्थ वोह पूर्वोक्तकर्म अच्छा और बुरा फल देतेहै पुण्यपापके हेतु होनेसे। (चक्रवदीर्यते) अत्रप्र०"जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्यच"॥इति

मू०—अज्ञानमेवास्यहि मूलकारणं
तद्धानमेवात्रविधौविधीयते।

विद्यैव तन्नाशविधौपटीयसी
न कर्म तज्जं सविरोधमीरितम्॥ ९॥

पद०-(अज्ञानं) अविद्या (एव) निश्चय करके (अस्य) इसका (हि) जिसकारणसे (मूलकारणं) कारणाकी जड (तत्) तिसका (हानं) नाश (एव) निश्चयसे (अत्रविधौ) इस विधिमें (विधीयते) विधान कराताहै (विद्या) ज्ञान (एव) निश्चयसे (तन्नाशविधौ) तिस अज्ञानके नाश विषे (पटीयसी) चतुर (न कर्म) कर्म नहि (सज्जं) तिस अज्ञानसे उत्पन्न (सविरोधं) विरोधवाला (ईरितं) कहाहै ॥ ९ ॥

अनुवा०-संसारका मूल कारण अज्ञान है इसके नाशवास्ते विद्याका उपदेशकरते है जिस लिये अविद्याका नाशक विद्याही है अज्ञानसे उत्पन्नभयाकर्म अज्ञानका नाशक नहि होसक्ताहै ॥ ९॥

विषमपद०-अविद्या और विद्याका लक्षण लिखतेहै वैशेषिकदर्शन प्र० २ आन्हिकं (इंद्रियदोषात् संस्कारदोषाच्चाविद्या ॥ १०॥ (अदुष्टं विद्या) पातंजलदर्शन सा० (अनित्याशुचिदुःखानात्मनित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या इतराविद्या) अर्थ इंद्रिय और संस्कारदोषसे अनित्यमे नित्य अपवित्रमे पवित्र दुःखमें सुखका जो ज्ञान वह अविद्या है और जो यथार्थज्ञान वह विद्या कहलातीहै ॥ ९ ॥

मू०-नाज्ञानहानिर्न च रागसंक्षयो
भवेत्ततःकर्म सदोषमुद्भवेत्॥

ततःपुनःसंसृतिरप्यवारिता
तस्माद्बुधो ज्ञानविचारवान् भवेत् ॥ १० ॥

पद० (न) नहि (अज्ञानहानि) अज्ञानका दूर होना (नच) औरनहीं (रागसंक्षयः) संसारके पदार्थोंकी प्रीतिका नाश (भवेत्) होताहै (ततः) तिससे (कर्म सदोषं) सदोष कर्म (उद्भवेत्) उत्पन्नहोताहै (ततः) तिसके पीछे (पुनः)फिर (संसृतिः) संसारका (अप्यवारिता) अनिर्वृत्ति (तस्मात्) तिस कारणसे (बुधः) बुद्धिमान् (ज्ञानवान्) विचारवाला ज्ञानकी (भवेत्) होवे ॥ १० ॥

अनु०—कर्मसे ना तो अज्ञानका नाश होवैहै और ना संसारके पदार्थोंकी प्रीतिका नाश किंतु एक और कर्म दोषयुक्त उत्पन्न होवैहैं जन्ममरणरूप संसारकी निवृत्ति होवैनहीं इसवास्ते बुद्धिवान्को उचित है की ज्ञानकी विचारवाला होवै अर्थात् ज्ञानके मार्गमे लगे ॥ १० ॥

विप०— शंका कहतेहै कि पीछे रामचंद्रजी ज्ञान जो है वह अविद्याका नाशक है इसको लेकर इस श्लोकमे ज्ञानवान् होना चाहिये ऐसे लिखतेहै इसमे कोई पूर्वपक्षी ॥ शंका करतेहै कि तुमारी अविद्या हेतु जो पूर्वोक्त तीनप्रकारका दुःख उसके नाशके लिये ज्ञानकी प्राप्तिहै ॥ यदि वह बाह्य पदार्थसे नाशको प्राप्त होवे तो ज्ञान महान कठिन आंतरिककी कुछ इच्छा नहि ॥ लोकोकी कहावतभी है (अर्के चेन्मधु विन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत् । इष्टस्यार्थस्य संसिद्धौ कोविद्वान् यत्नमाचरेत् इति) अर्थ यह है कि यदि अर्कमे शहित मिले तो पर्वतमेंकोउजाना । जो इष्टपदार्थ

से सिद्ध होवे तो उस्मे यत्न किउ करना॥ जैसे कि (अध्यात्मिक) शारीरिक पीडाके लिये वैद्यशास्त्रमे बहुतलीलावती गंगाधर ज्व-रांकुशादिजिनमे प्रतिज्ञा हैं कि यदि इस रोगको ना हटावे तो हमारेको यह हो उनसे शरीरसैं तापादिक सब हटते है॥ और मनके दुःख दूरकर्नेका उपाय सुंदर स्त्री दुग्ध घृत सुगंध वस्त्र भूषणादि (अर्थात् मनकी इच्छा पूर्ण होती इत्यादि पदार्थसे मानसिक पीड़ा नष्ट होजातीहै ॥ आधिभौतिक दुःखके नाश करनेके लिये। नीतिशास्त्रका अभ्यास (यथा "नाज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित्") अर्थ जिस पुरुषका कुल औ स्वभाव ना देखाहो उस्के साथनहि रहणा (और धर्मशास्त्रके पठनेसे यथा जलं पिबेन्नांजलिना शयानं न प्रबोधयेत् । नाक्षैः क्रीडेन्न धर्मघ्नैर्व्याधितैर्वान संविशेत् ॥) "इत्यादि (तथा। वैद्यशास्त्रके पढनेसे (यथा " वर्षातपादिषु छत्री दंडी रात्र्यटवीषु च)। अर्थ वर्षा और धूपमे छतरी रात और मार्ग जाणोमे दंड रखणा चाहिये) इत्यादि शास्त्रोमे बहुत शिक्षाहै जिससे प्राणीका दुःख तीनकालमे कभीना हो ॥ और (आधिभौतिक) दुःखके नाशमे मणि मंत्र रसायनादि लिखेहै फिर ज्ञानकी क्या आवश्यकता है यत्न फिर किऊकरना इसका उत्तर देतेहै कि पूर्वोक्त यद्यपि ठीक २ दुःखके नाश कहे तथापि दुःखका अतिशय करके नाश नहिहोता जैसे इस काल औषधादियोंसे दुःखनाश होगया सम पाप फिर दुःखउत्पन्न होताहे जैसे मंत्र औषधी नीतीसे तपका नाश किया फिर नष्टभया कीऊ होता क्या उसमे औषधादि नहिभये यदि आप शास्त्रके अभ्यास होनेसे ना दुःखहोणेदेगे तो जन्म मरणका दुःख कैसा नाशकरेंगें फिर ज्ञानकी आवश्यकता माननीपडैगी ॥ फिर पूर्वपक्षी इसमे कहताहै कि धनका साधन जो यज्ञादि उनसे आरामपूर्वक मोक्षकी प्राप्ति होतीहै (इसमे प्रमाण है यथा स्वर्गकामो यजेत) स्वर्गका लक्षण ("यन्न

दुःखेन संभिन्नं न च ग्रस्तमनंतरं ॥ " अभिलाषोपनीतं च तत्सुखं स्वःपदास्पदं) ॥ " यदि तुम कहो कि सुख दुःखकी उत्पत्तीमें कारणहै तो स्वर्ग अच्छा नहि ॥ तो फिरदुःखके होनेसे स्वर्ग अच्छा नहि तो हम कहतेहै कि सोमयागसे अमृत अर्थात् जन्ममरणसे रहित होजाताहै प्रमाण यथा (अपामसोमममृताअभूमे"ति) फिर ज्ञान नाचाहिये ॥ सिद्धांत कहतेहै जिससे फिर शंका ना हो ॥ यज्ञ कोई प्रहरमे कोई दिन रातमे वा संवत्मे होतेहै उस्का फल दिव्यवर्ष १००।१०००।१०००० । तक भोग फिर पुण्य क्षीणहोनेसे दुःखको प्राप्तहोतेहै यथा ॥("तस्माद्यास्याम्यहं तात दृष्ट्वेमं दुःखसंनिधिं । त्रयीधर्ममधर्माढ्यं किंपाकफलसंनिभम् ।) " इति मार्कण्डेयवचनात् ॥ जो तुम कहतेहै सोमयागसे अमृत होजाताहै उस्का अर्थ प्रलयपर्यंत जीवनका है नहि मोक्षका प्रमाण यह है (" आभूतसंप्लवस्थानं अमृतत्वं हि भाष्यते) " इति स्मरणात् इस लिये अविद्याका दृष्ट साधन धनादिकोसे नाश ना होनेकर्के रामचंद्र कहतेहै (तस्माद्बुधो ज्ञानविचारवान् भवेत्) ज्ञानका उपदेश कर्ते है ॥ कपिलदेव कहतेहै (न दृष्टात्तत्सिद्धिर्निवृत्तेप्यनुवृत्तिदर्शनात्) सांख्य प्रवचनभाष्य—१ अ० सू०२ ॥ १०॥

मू०—ननु क्रिया वेदमुखेन चोदिता
यथैव विद्या पुरुषार्थसाधनं ॥
कर्तव्यता प्राणभृतः प्रचोदिता
विद्या सहायत्वमुपैति सा पुनः ॥ ११ ॥

पद०—(ननु) शंकाहै (क्रिया)कर्म (वेदमुखेन चोदिता) वेदनेही कथन कीयाहै (यथैव) जैसे (विद्या) ज्ञान रुपार्थसाधनं) मोक्षका साधन है (कर्तव्यता) करनेके

ग्य (प्राणभृतः) प्राणियोकों (प्रचोदिता) कथन कियाहै (वि-
द्यासहायत्वं) ज्ञानकी सहायताको (उपैति) प्राप्तहोवेहैं (सा)
सोंकर्म (पुनः) फिर ॥ ११ ॥

अनुवा०—हेभगवन् अग्निहोत्रादिक कर्मभीतो वेदने कहे-
हैं तोफिर क्यों कर्म निन्दित हुवा जैसे ज्ञान मोक्षका साधनहै
तैसे कर्मभी मोक्षका साधन चाहिये तिसपर श्रीरामचंद्रजी
कहतेहै हे लक्ष्मण मनुष्योकों निष्काम कर्म कर्णायोग्यहै।यही
चित्तकी शुद्धिवास्ते चितकी शुद्धि ज्ञानमे हेतुहै इसमे हेतु य-
हहै कि नहि वेदने स्वर्गादि पदार्थोंके लिये यागादि कर्मवि-
धान किये कि जिस स्वर्गमें महाविषयरूप प्रमाद होताहै ति-
स स्थानमे कुशल कहाहै यदि वेद थोडे दुःखसे बचाय
कर बडे स्वर्गाहिप्रमादमे गेरदेवे तो वेदहि दुःखदाताभये इससें
स्पष्ट प्रतीत होताहै कि निष्काम कर्म करनेसे चित्तशुद्धिद्वारा
ज्ञान होताहै ॥ ११ ॥

विषमपद०—चित्तकीअशुद्धिमे उदाहरण. (" मलिनो हि यथा
दर्शो रूपालोकस्य न क्षमः । तथा विपक्ककरणं आत्मज्ञानस्य न
क्षमम्) या०स्मृ०३अ०श्लो०४१ ॥ ११ ॥

मू०—कर्माकृतौ दोषमपि श्रुतिर्जगौ
तस्मात्सदा कार्य्यमिदं मुमुक्षुणा ॥
न तु स्वतंत्रा ध्रुवकार्य्यकारिणी
विद्या न किंचिन्मनसाप्यपेक्षते ॥ १२ ॥

पद०-(कर्माकृतौ)कर्म ना करनेमे(दोषं)दोषको(श्रुति)वेद (जगौ)कहताहै(तस्मात्)तिससे (सदा)सदैव (कार्य्यं)कर्नेयोग्य है (इदं)यह (मुमुक्षुणा)मोक्षकी इच्छावालेने (ननु)ऐसे नहि (स्वतंत्रा)अपने आधीन है (ध्रुवकार्य्यकारिणी)निश्चित काम करनेवाली(विद्या)ज्ञान(न)नहि (किंचित्)थोडासा (मनसा)मनकर्के (अपि)निश्चयसे(अपेक्ष्यते)इच्छाकरती ॥१२॥

अनु०-प्रतिवादी कहैहै कर्मोका ना करना वेदमे दोष लिखाहै तिस कारणसे मोक्षकी इच्छावालेंको कर्म करना उचितहै सिद्धांति उत्तर देताहै विद्या अर्थात् ज्ञान स्वाधीन है निश्चलकार्य्य नाम मोक्षका साधनरूप इसवास्ते मोक्षरूपिकार्य्यके करनेवालीहै और वह ज्ञान कीसी कर्मकी सहायताकि इच्छा नहिकरता ॥ १२ ॥

विषमपद०—"उपनीयगुरुं शिष्यं महाव्याहृतिपूर्वकं। वेदमध्यापयेदेनं शौचाचारांश्च शिक्षयेत् ॥ या. स्मृ. १०" अ.१२। कर्म कर्नेमे यह स्मृति प्रमाणहै ॥ और श्रुतिप्रमाणहै यथा. यजु. शुक्ल.अ० ४। मंत्र २—कुर्वन्नेवेह कर्म्माणि जिजीविषे शतꣳसमाः । एवं त्वयि नान्यथेतोस्ति न कर्म लिप्यते नरे। कर्मके नाशकरनेमे प्रत्यवाय—अर्थात् दोष होताहै। इसमे श्रुति प्रमाणहै यथा—अथर्ववेद० ३खं०"यस्याग्निहोत्रदर्शपौर्णमासचातुर्मास्य मनाग्रयणमतिथिवर्जितञ्च ॥ आहुतमवैश्वदेवमविधिना हुतमासप्तमांस्तस्य लोकान् हिनस्ति ॥" इति ॥ अर्थात् जिस्के अग्निहोत्रादि कर्म्म अतिथिपूजा वैश्वदेव पंचाहुति नहिहै उस्के सातलोककी अग्निदेवता नष्ट करताहै ॥ १२ ॥

मू०-न सत्वकार्य्योपि हि यद्वदध्वरः

प्रकांक्षतेन्यानपि कारकादिकान् ॥
तथैव विद्या विधितः प्रकाशितै-
र्विशिष्यते कर्मभिरेव मुक्तये ॥ १३ ॥

पद०--(न) नाहि (सत्वकार्यं) सत्वका कार्य (अपि) निश्चयकर्के (हि) जिससे (यद्वत्) जैसे (अध्वरः) यज्ञ (प्रकांक्षते) इच्छाकरताहै (अन्यान्) दूसरे (अपि) नि० (कारकादिकान्) कारकाकी। (तथा) तैसे (एव) निश्च-यसे (विद्या) ज्ञान (विधितः प्रकाशितैः) वेदविधिसे प्रका-श कियेहुऐ (विशिष्यते)विशेषहोतेहैं (कर्मभिः) कर्मोसे (ए-व) नि० (मुक्तये) मुक्तिवास्ते ॥ १३ ॥

अनु०—प्रतिवादी कहेहै कि जो तुमने कहाहै विद्या कि-सीं कर्मकी सहायता नहि चाहती सो सत्य नहिहै क्यो कि कर्म ज्ञानकी सहायता अवश्य कर्ताहै दृष्टांत देते है जैसे य-ज्ञ गंगातीरादिक उत्तमदेश ग्रहणादिक उत्तम काल इत्यादिक और सामग्रीकी इच्छाकरताहै और इनद्वारा अधिकफल प्र-दाताहोताहै तैसे ज्ञान विधिवाक्यसे प्रकाशकिये जो अग्निहो-त्रादि कर्म है तिनकी सहायतासे शीघ्रमुक्तिदायकहोताहै। १३

विषमपद०— "अधीतवेदो जपकृत्पुत्रवानन्नदोग्निमान् शक्त्या च यज्ञकृन्मोक्षे मनः कुर्यात्तु नान्यथा ॥ " अर्थात वेद पढ गाय-त्र्यादिजप (अनुष्ठान कर गृहस्थी होवे तो पुत्रवान् अन्नदाता अग्नीयोवाला—अर्थात अग्नीका अनुष्ठान करनेवाला यथाशक्ति य-ज्ञादिक करके मोक्षमै मनको करे अन्यथा न) इत्यादिवाक्यसे य-

ज्ञ मोक्षका उपकारक सिद्ध होताहै ॥ यथा देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्विकं विदुः ॥ इत्यादि ॥ १३ ॥

मू०केचिद्वदंतीति वितर्कवादिन-
स्तदप्यसद्दृष्टविरोधकारणात् ॥
देहाभिमानादभिवर्द्धते क्रिया
विद्या गताहंकृतितः प्रसिद्ध्यति॥ १४ ॥

पद०—(केचित्) कोईएक (वदंति) कहतेहै (इति) ऐसा (वितर्कवादिनः) नैयायिक (तत्) सो (अपि) निश्चयसे (असत्) झूठहै (दृष्टविरोधकारणात्) प्रत्यक्षविरोधकारण होनेसे(देहाभिमानात्)शरीरके अभिमानसे(अभिवर्द्धते) उत्पन्न होवैहै (क्रिया) कर्म(विद्या) ज्ञान (गताऽहंकृतितः) निरहंकार होनेसे (प्रसिध्यति)प्रगट होवैहै १४ ॥

अनुवा०—कोई वितर्कवादि कहैहै कि ज्ञान और दोनो मिलकर मुक्तिका साधनहै सो यह बात सत्य नहिं क्यों कि ज्ञान और कर्मके कारणमें प्रत्यक्ष विराध हे देखिये देहादि अनात्मपदार्थोंमे आत्मबुध्दि होनेसे कर्म उत्पन्न होवैहै और निरहंकारसे ज्ञान उत्पन्नहोताहै जिनके कारणमैं ही विरोध है उनका मिलना केसे बने इस लिये ज्ञान और कर्म दोनौ मिलकर मोक्षकासाधन नहि होसक्के ॥ १४ ॥

विषमपद०—नैयायिक सप्त पदार्थके ज्ञानसे मुक्ति मानतेहै. ल० द्रव्य ९ । गुण २४ । कर्म ५ । सामान्य । विशेष । समवाय ॥ अभाव ४ इनका यथार्थ ज्ञानादिसे मुक्ति होतीहै ॥ १४ ॥

मू० विशुद्धविज्ञानविरोचनांचिता
विद्यात्मवृत्तिश्चरमेति भण्यते ॥
उदेति कर्माखिलकारकादिभि-
र्निहंति विद्याऽखिलकारकादिकम् ॥ १५ ॥

पद०--(विशुद्ध) विशेषकर्के शुद्ध (विज्ञान) विशेषज्ञान (विरोचन)विचार (अंचिता) प्राप्तहूया (विद्या) ज्ञान (आत्मवृत्तिश्चरमेति)आत्माकी पिछली वृत्ति (भण्यते) कहीदाहै (उदेति) प्रगटहोताहै (कर्म) यज्ञ (अखिलकारकादिभिः) संपूर्णसामग्रीयोंकर्के (निहंति) नाशकरतीहै (विद्या)ज्ञान (अखिलकारकादिकं) संपूर्ण कारकांको॥ १५

अनुवा०--प्रतिवादिके अनुमानको दूषण देतेहै ॥ कहते है कि निर्मलविज्ञानकी उत्पत्ति कर्नेवाले जो वेदांतवाक्य तिनके समूहके विचारनेसे अंतःकर्णमें ब्रह्ममयभावनाका होना अर्थात् जगत् सर्व ब्रह्ममय भासना ऐसी वृत्तिका नाम विद्याहै (ब्रह्माहमास्मि इति)अव विद्या और कर्मके विरोधको दिखलावतेहै ॥ यज्ञादिकर्म संपूर्ण अंगोके सहित होकर फलको देताहै विद्या दूरकरतीहै कर्तृत्वादि बुद्धिको नाशकर सकल व्यापारसे रहित होकर ब्रह्ममे मनकी समाप्ती को विद्या कहतेहै । क्योकि कर्मद्वारा चित्तकी शुद्धि तद्द्वारा ज्ञानकी उत्पत्ती होतीहै किंतु ज्ञानका फल जो मोक्ष तिसकी उत्पत्तिमे किसी कर्मकी अपेक्षा नहि करती वह मोक्ष स्वयंसिद्ध है याने विद्या और कर्ममे विरोध है ॥ १५ ॥

विषमपद०—प्रथम कर्मकरना पीछे ज्ञानप्राप्ति इस्मे प्रमाण यजु. शुक्ल. ४० अ० ऋ०" विद्यां चाविद्यां यस्तद्वेदोभय९ सह अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते " ॥ अर्थ यह है। अविद्यासे मृत्यूको तर विद्यासे अमृत होताहै ॥ १९ ॥

मू०—तस्मात्त्यजेत् कार्य्यमशेषतः सुधी-
र्विद्याविरोधान्न समुच्चयो भवेत् ॥
आत्मानुसंधानपरायणः सदा
निवृत्तसर्वेन्द्रियवृत्तिगोचरः ॥ १६ ॥

पद०—(तस्मात्) तिस कारणसे (त्यजेत्) त्यागे(कार्यं)कर्मको (अशेषतः) संपूर्णताकरके (सुधीः) विद्वान् (विद्याविरोधात्) ज्ञानके विरोधसे (न) नहि (समुच्चयो भवेत्) एकठा होता (आत्मानुसंधानपरायणः सदा)सोहं इस ज्ञानवाला (निवृत्त)त्यागदीहै (सर्व) संपूर्ण (इंद्रियवृत्तिगोचरः) इंद्रियोंके विषयोंको जिसने॥ १६ ॥

अनु०—तिस कारणसे श्रेष्ठबुद्धि वाला पुरुष कर्मके संपूर्णताकरके त्याग देवे कर्म त्यागे पर जो कर्तव्य है सो कहतेहैं आत्मामे वृत्तिको लगावे और सर्वइंद्रियोंके विषयोंसे वृत्तिको निवृत्तकरे इहा कर्मका त्याग इस प्रकारका है सकाम कर्म तो संपूर्णताकर त्यागदेवे और नित्य नैमित्तिक कर्म अंतःकर्णाकि शुद्धिहोनेतक अवश्य करने योग्यहै और नाकरनेते प्रत्यवायसे अंतःकरण मलीन होजाताहै इस वास्ते करने योग्यहै तैसे निष्काम कर्म सदा करने चाहिये ॥ १६ ॥

विषमपद०—आत्मानुसंधानमे श्रुति यथा ("आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मंतव्यो निदिध्यासितव्यः" इति अत्र जिस तरह निवृत्त हो विषयोंसे मुमुक्षको आत्मज्ञान होवे वह श्रुति लिखते है "ईशावास्यमिद ँ सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत् । तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृधः कस्यस्विद्धनम् ॥") यजु. शुक्ल. ४० अ. श्लो. १ ॥ संपूर्ण जगत्परमेश्वरसे आच्छादितहैइत्यादि भावनासे ११

मू० यावच्छरीरादिषु माययात्मधी-
स्तावद्विधेयो विधिवादकर्मणाम्॥
नेतीति वाक्यैरखिलं निषिध्य त-
ज्ज्ञात्वा परात्मानमथ त्यजेत् क्रियाः॥१७॥

पद०–(यावत्) जितना चिर (शरीरादिषु) शरीरादि पदार्थोंमे (माययात्मधीः) अज्ञानसे आत्मबुद्धि है (तावत्) तितना चिर (विधेयः) कर्नां योग्य है (विधिवादकर्मणां) कर्मोंका (नेति)नाहिहै (निषिध्य) दूषणदे (तत्) तिसकारणसे (ज्ञात्वा) जान (परात्मानं)परआत्माको (अथ)पीछेसे (त्यजेत्) त्यागदेवे (क्रिया) कर्म ॥ १७॥

अनु०—जबतक शरीरादि पदार्थोंमे जीवको मायासे आत्म बुद्धि है तबतक विद्धिपूर्वक कर्मका अनुमान करतारहै और अहंबुद्धि नाशहोनेवर नानाश्रुति वाक्यसे सर्व जगतको मिथ्या समझ जगतसे भिन्न स्वरूप आत्माको जानकर कर्मको त्यागदेवे ॥ १७ ॥

विषमपद–(शारीरादिषु माययात्मधीः) मै करता है मेरा-

काम मे भोक्ता इत्यादिकका त्याग(नेतिनेतीतित्यागाद्विवेकश्रुतिः) अर्थ इदं दृश्यमानं जगत् नसत्यम् एवं तत्वाभ्यासान्नास्मि नमे नाहमित्यपरीशेषं। अविपर्ययाद्विशुद्धं केवलमुत्पद्यते ज्ञानम् (६४) "ज्ञानिनाऽज्ञानिना वापि यावद्देहस्य धारणं। तावद्वर्णाश्रमभोक्तं कर्तव्यं कर्म मुक्तये" ॥ इति ॥ १७ ॥

मू०—यदा परात्मात्मविभेदभेदकं
विज्ञानमात्मन्यवभाति भास्वरं ॥
तदैव माया प्रविलीयतेंजसा
सकारका कारणमात्मसंसृतेः ॥ १८ ॥

पद० (यदा) जब (परात्म) ब्रह्म (आत्म) जीवात्मा (विभेद) भेद (भेदकं) दूरकरनेवाला (विज्ञान) विशेष ज्ञान (आत्मनि) अंतः करणविषे (अवभाति) प्रगटहोताहै (भास्वरं) प्रकाश वाला (तदा) तब (एव) निश्चयकरके (माया) अविद्या (प्रविलीयते) नष्टहोतीहै (अंजसा) शीघ्र (सकारका) जन्मांतरके पापोंसहित (कारणं) कारणहै (आत्मसंसृते) जीवके जन्मका ॥ १८ ॥

अनु० चित्त शुद्ध होनेपर परमात्मा परब्रह्मसे जीवात्मामे जो उपाधिभेदहै तिसके दूरकरनेवाला प्रकाशरूप विज्ञान अंतःकरणविषे प्रकाश करताहै तब पूर्वजन्मके पापसहित माया नाशहोतीहै तब कर्मभी नष्टहोतेहै वह माया पूर्वकर्मके साथ मिल जीवका जन्महेतु है ॥ १८ ॥

विषमपद—०अब अभेदजीवब्रह्मकेविषे प्रमाण देतेहै यजुर्वेदीय

कठोपनिषत्. ३–तृतीया वल्ली- (" आत्मानꣳरथिनं विद्धि शरीरꣳरथमेव तु॥ बुद्धिन्तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥ ३ ॥ इंद्रियाणि हयानाहुर्विषयाꣳस्तेषु गोचरान् । आत्मेंद्रियमनोयुक्तं भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः॥४॥") जीवका निरूपण है यह आगे ब्रह्मकू लिखतेहै (" इंद्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः । मनसश्च परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः ॥ १० ॥ महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः । पुरुषान्न परं किञ्चित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥ ११ ॥ एष सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते । दृश्यते त्वग्रया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥ १२ ॥ "यह ब्रह्महै इसका अंश मायायुक्त होकर जीव कहलाताहै वास्तवसे एकहीहै जैसे सूर्यका प्रतिबिंब घटादिपदार्थोंमे मायाकर अनेकप्रकारका दिखलाईदेताहै वास्तवसे एकही है ज्ञानको सर्वोत्कृष्ट फल प्रतिपादन कर्तेहै " यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ॥ ९ ॥ विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः । सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमम्पदम् – ८ ॥ " इत्यादि ॥ १८ ॥

मू०—श्रुतिप्रमाणैरपि नाशिता च सा
कथं भविष्यत्यपि कार्यकारिणी ॥
विज्ञानमात्रादमलाद्द्वितीयात्
तस्माद‌विद्या न पुनर्भविष्यति ॥ १९ ॥

पद०--(श्रुतिप्रमाणैः) वेदके प्रमाणोंसे (अपि) निश्चयकर (नाशिता च सा) नष्टकीहुई वह अविद्या (कथं) कैसे (भविष्यति) होवेगी (कार्यकारिणी) कर्मके करनेवाली (विज्ञानमात्रात्) विज्ञान स्वरूपते (अमलात्) नि-

मेलते (अद्वितीयात्) केवलते (तस्मात्)तिस विज्ञानते (अविद्या) अज्ञान (न) नहि (पुनः) फिर (भविष्यति) होवेगा ॥ १९ ॥

अनुवा०—तत्त्वमसिआदिक वेदश्रुति महावाक्योंसे उत्पन्नभये ज्ञानसे नाशको प्राप्त जो अविद्या वह किसप्रकार असत्य कार्य करनेवाली होसक्तीहै और केवल निदिध्यासनाद्विद्वारा ज्ञान होनेसे नाशहोतीहै तब फिर उस्के कार्य्य कब होसक्तेहै जैसे भ्रांतिके कारण रज्जूमें सर्प भ्रम हुवाहै जब रज्जूहैयह यथार्थ ज्ञान होजावे तो फिर सर्पका भ्रमकहां॥१९॥

विषमपद—यथा"चित्राधारपटत्यागे त्यक्तं तस्य हि चित्रकं ।
भक्तेर्विरमेत चेत्थं ध्यायिनां के स्मरादयः
न विरोधो न चोत्पत्तिर्न बद्धो न च मुक्तकः ।
न मुमुक्षुर्न वै मुक्त इत्येषा परमार्थता ॥
बंधमोक्षौ सुखं दुःखं मोहापत्तिश्च मायया ॥
स्वप्ने यथात्मनः ख्यातिः संसृतिर्न तु वास्तवी ॥
असदत्र किंचित् पश्यति अनन्वागतस्तेन भवति । "इतिश्रुतेः

मू०—यदि प्रनष्टा न पुनः प्रसूयते
कर्ताहमस्येतिमतिःकथं भवेत्॥
तस्मात्स्वतंत्रा न किमप्यपेक्षते
विद्याविमोक्षाय विभाति केवला ॥ । २० ।

पद०—(यदि) जिसकालमे (प्रनष्टा) नाशहूई (न)नहि (पुनः) फेर (प्रसूयते) उत्पन्नहोती (कर्ताहं) मे कर्नेवाला हूं

(अस्य) इस पुरुषको (इति मतिः) ऐसी बुद्धि (कथं) कैसे (भवेत्) होवे (तस्मात्) तिस कारणसे (स्वतंत्रा अपने आधीन (न) नहि (किमप्यपेक्षते) किंचित्मात्र दूसरेकी इच्छा करती (विद्या) ज्ञान (विमोक्षाय) मोक्षके वास्ते (विभाति) प्रकाशहै (केवला) इकेली ॥ २० ॥

अनुवा०--जब अविद्या नष्ट होकर फिर उत्पन्नही नहि होती तो अहं बुद्धि अर्थात् मै करताहूं यह बुद्धि कैसे होसक्तिहै इससे यह सिद्ध भया कि विद्या स्वतंत्र है दूसरी किसी वस्तूकी इच्छा नहि रखती आपही आप मोक्षकेवास्ते प्रकाशमानहै ॥२० ॥

विषमपद०--अर्थात् कारणके नाश होनसे कार्यकाभी नाश होताहै जैसै कुलाल चक्र चीवर मृत्तिकाके नाशसे कार्यरूप घटका नाश होताहै तद्वत् अज्ञानके नाशसे अहंकाररूप कार्यका नाश अवश्यहोताहै ॥ २० ॥

मू०--सा तैत्तिरीयश्रुतिराह सादरं
न्यासं प्रशस्ताखिलकर्मणां स्फुटम्॥
एतावदित्याह च वाजिनां श्रुति-
र्ज्ञानं विमोक्षाय न कर्मसाधनम्॥ २१ ॥

पद०--(सा) सोई (तैतिरीयश्रुति) तैतरीयशाखाकी श्रुति (आह) कहतीहै (सादरं) आदरसो (न्यासं) त्याग ना (प्रशस्त) श्रेष्ठहै (अखिलकर्मणां) संपूर्ण कर्मोंका (स्फुटं) प्रसिद्ध (एतावत्) इतनाहि (इति) ऐसे (आह)

कहतीहै (वाजिनां श्रुतिः) वाजिसनेयोकी श्रुति (ज्ञान विमोक्षाय) ज्ञान मोक्षके वास्ते (न) नहि (कर्मसाधनं) कर्मसाधन ॥ २१ ॥

अनु०—प्रसिद्ध और स्पष्ट और सावधानतासे तैत्तरीय-श्रुति कर्मके त्यागको कहतीहै तैसे वाजसनेयियोकी श्रुतिभी कहतीहै अर्थात् मोक्षकी प्राप्तिवास्ते ज्ञानही साधन है कर्म नहि ॥ २१ ॥

विषमपद०—वाजसनेयी श्रुति यथा- प. ४० अ. मं ३ ॥ "असुर्य्यानाम ते लोका अंधेन तमसा वृताः। ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः * ॥ ३ ॥" अर्थ जो पुरुष अज्ञानीहै वह असुराके यो लोक अंधकारसे युक्त उन्को प्राप्तहोताहै ॥ ज्ञानकी प्रशंसा जैसे। " यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति। सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥६ ॥ यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥७॥ भावार्थ यह है कि जो पुरुष अपनेमे सर्वको और सर्वमे आपको अनुभवकर्ताहै वह जन्मता नहि और कहा मोह शोकादि एकत्व देखनेवालेमें ॥ २१ ॥

मू०—विद्यासमत्वेन तु दर्शितस्त्वया
क्रतुर्न दृष्टान्त उदाहृतः समः ॥
फलैः पृथक्त्वाद्बहुकारकैः क्रतुः
संसाध्यते ज्ञानमतो विपर्ययम् ॥ २२ ॥

प०—(विद्यासमत्वेन) ज्ञानके बराबर (तु) फिर (दर्शि-

तः) दिखायाहे (त्वया) तुमने (क्रतु) यज्ञ (न) नहि (दृष्टांत उदाहृतः) दृष्टांत कहा (समः) बरावर (फलै पृथक्त्वात्) फलोंके जुदा होनेते (बहुकारकैः) बहुत सामर्थ्य और बहुत साधनोंसे (क्रतुः) यज्ञ (संसाध्यते) भलेप्रकार सिद्ध होताहे (ज्ञानं) ज्ञान(अतः) इसते (विपर्यय) विपरीतहै ॥ २२ ॥

अनुवा०—(१२) श्लोकमे जो तुमने कहाहे कि विद्याके तुल्य यत्नहि है परंतु उस्का दृष्टांत वहिकहा (क्यों) किं यज्ञ फलमैभी जुदा है और बहुकारक अर्थात भिन्नरहोनेसे और यज्ञादि क्रिया अहं मम बुद्धि अर्थात मै करताहुं मेरा यह कर्म है इस अभिमानते होताहे और अंतर बाहिर व्यापार और देश काल नियमद्वारा सिद्ध होताहै इस हेतुसे ज्ञान कर्मसे विपरीत है क्यों कि ज्ञानकी उत्पत्ति अहंकारके त्यागसे होतीहै ॥ २२ ॥

विषमपद०—जैसा यज्ञादिमे अहंकारसे युक्त आत्मा होताहे वोह इष्टिमें उदाहरणदेहै (ॐतत्सच्छ्रीपरमेश्वरप्रीतये दर्शपौर्णमासाभ्यामहं यक्ष्ये—तत्र सद्यः पूर्णमासेष्ट्याऽहं यक्ष्ये) ब्रह्मवरणं यथा (तत्र भूपते भुवनपते महतो भूतस्य पते ब्रह्माणं त्वां वृणीमहे) वृत्तो जपति—(ॐअहं भूपतिरहं भुवनपतिरहं महतो भूतस्य पतिःइत्यादि)वाक्योंमें यजमान ब्रह्मा. ऋत्विग्. पत्नी. आग्नीध्र. अध्वर्यु इनका भेद मे करताहै यह प्रतीति होतीहै आत्म ज्ञानमे एकता प्रतीति होतीहै यथा.शुक्ल. यजुर्वेदअ.३२ । अनु० । १ । मं० १ ॥ " तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदुचन्द्रमाः । तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म ता

आपः स प्रजापतिः ॥ १ ॥ (सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचन)" इत्यादिश्रुति एकता कहतीहै ब्रह्ममे (भाव यह है कि प्रथम निष्काम यज्ञादिक कर्म कर चित्त शुद्धकरे पीछे ब्रह्मविद्यामे ज्ञानवान् भये मुक्ति निश्चयसेहोतीहै (ज्ञानान्मुक्तिः) (बंधोविपर्ययात्) इस तरह कर्मकाण्ड और ज्ञानकाण्ड वेदोक्त दो सार्थक भये ॥ २२ ॥

मू०–सप्रत्यवायो ह्यहमित्यनात्मधी-
रज्ञप्रसिद्धा नतु तत्त्वदर्शिनः॥
तस्माद्बुधस्त्याज्यमविक्रियात्मभि-
र्विधानतः कर्म विधिप्रकाशितं ॥ २३ ॥

पद०–(स) साथ (प्रत्यवायः) कर्म ना कर्नेका पापवाला (हि) निश्चयकर्के (अहं) मै हूं (इति) ऐसी (अनात्मधीः) अनात्मबुद्धि (अज्ञप्रसिद्धा) अज्ञानीकी होवेहै (नतु) नहि (तत्वदर्शिनः) ज्ञानीको (तस्मात्) तिसकारणसे (बुधैः) बुद्धिमानोने (त्याज्य)त्यागने योग्यहै (अविक्रियात्मभिः (नहिभया विकारको आत्मा जिनका तिनोंने (विधानतः) नियमसे (कर्म विधिप्रकाशितं) विधिवाक्योसे प्रगटभया जो कर्म ॥ २३ ॥

अनुवा०–यदि कहो कि कर्मके ना कर्नेसे पाप होता इस अनुभवसे कर्म करना उचित है कि जैसे लोग कहते कि हम पापी है यह बुद्धिअज्ञानीको होवेहै ज्ञानीको नहिहै इसवास्ते जो कर्म नाना नियमोंके साथ सकामी पुरुषोंके लिये विधि-

वाक्योंसे प्रगटभये । ज्ञानीको उन्का त्यागकरना उचितहै२३

विषमपद०—भावार्थ यह हैकि कर्मका करना फलकी इच्छा नाकरणी ज्ञानवान्पुरुषको चाहिये ॥ २३ ॥

मू०—श्रद्धान्वितस्तत्त्वमसीतिवाक्यतो
गुरोः प्रसादादपि शुद्धमानसः ॥
विज्ञाय चैकात्म्यमथात्मजीवयोः
सुखीभवेन्मेरुरिवाप्रकम्पनः ॥ २४ ॥

पद०—(श्रद्धान्विताः) श्रद्धायुक्त (तत्त्वमसीतिवाक्यतः) तत्त्वमसिमहावाक्यसे (गुरोः) गुरुकी (प्रसादात्) प्रसन्नतासे (अपि) निश्चयसे (शुद्धमानसः)निर्मल है मन जिस्का (विज्ञाय) जानकर (च) फेर (ऐकात्म्यं) एकता (अथ) इसते पीछे (आत्मजीवयोः) आत्मा और जीवका (सुखी भवेत्) सुखी होवे (मेरुरिव) मेरुपर्वतकी न्याई (अप्रकंपपनः)अचल ॥

अनुवा०—श्रद्धायुक्त और शुद्ध मन होकर तत्वमसिमहावाक्य और सद्गुरुकी कृपासे जीवात्मा और परमात्माकी ऐक्यता जानकर सुखी और मेरुकी न्याई अचल होवे॥२४॥

विषमपद०—तत्त्वमेव त्वमेव त्वं एवं श्रुतिशतोदितं ॥ इत्यादिवाक्योसे जीवब्रह्मकी एकता कर स्थिरचित्तभये मेरुकी न्याई ॥२४॥

मू०—आदौ पदार्थावगतिर्हि कारणं
वाक्यार्थविज्ञानविधौ विधानतः ॥

तत्त्वंपदार्थौ परमात्मजीवकौ
असीति चैकात्म्यमथानयोर्भवेत्॥ २५॥

पद० (आदौ) पहिले (पदार्थ) पदका अर्थ (अवगति) जानणा (हि) निश्चयसे (कारणं) कारणहे (वाक्यार्थ) वाक्योका अर्थ (विज्ञान) अच्छीप्रकार जानणा (विधौ) विधिमें (विधानतः) विधिपूर्वक (तत् त्वं) इन्का अर्थ (परमात्मजीवकौ) परमात्मा और जीवात्मा (असि)तू है (इति) यह (च) पुनः (ऐकात्म्यं) एकता दोनोकी (अथ) पीछे (अनयोः) दोनोकी (भवेत्) होवेहै ॥ २५ ॥

अ०—वाक्यके अर्थ जाननेवास्ते प्रथम पदोका अर्थ जानना मुख्य कारणहै इसवास्ते तत्त्वमसि इस महावाक्यके अर्थ जाननेसें प्रथम इस्के पदोका अर्थ जानना चाहिये ॥ सो इस महावाक्यके तीन पदहै तत् १ त्वं २ असि ३ इन तीनोंमेसें तत्पदकाअर्थ सर्वज्ञता आदिगुणोंवाला परमात्मा है और त्वं पदका अर्थ जीवहै इन दोनोंको एक जाननेवाला असि पदहै अर्थात् यह जो परमात्मा सोई जीव है ॥ २५ ॥

विषमपद०—(वाक्यार्थज्ञाने पदज्ञानस्य कारणता) इसन्यायसो अथ वाक्यका लक्षण कहतेहै (साहित्ये "अन्वितैकार्थबोधे तु-वाक्यं पदसमुच्चयः)" अर्थ—योग्य अर्थके बोधनमे जोपदसमूह है। वोह वाक्यहोताहै यथा—जननी सुताननं सस्नेहमीक्षते। माता-पुत्रमुखको साथ स्नेहके देखती है। इहा जो पदोंकी युक्त एकवाक्यता है इसको वाक्य कहतेहै ॥ २५ ॥

मू०--प्रत्यक्परोक्षादिविरोधमात्मनो-
र्विहाय संगृह्य तयोश्चिदात्मताम् ॥
संशोधितां लक्षणया च लक्षितां
ज्ञात्वा स्वमात्मानमथाद्वयो भवेत् ॥ २६ ॥

प०--(प्रत्यक्) प्रत्यक्ष (परोक्ष) जो ना दीखे (आदि) आदिके (विरोधं) असमता (आत्मनः) आत्माकी (विहाय) त्यागकर (सं) भलीप्रकार (गृह्य) ग्रहणकरके (तयोः) दोनोंकी (चिदात्मतां) चेतनता (संशोधितां) भलीप्रकार शोधीहुई (लक्षणया) लक्षणासे (च) और (लक्षितां) दिखाईहुई (ज्ञात्वा- जानकरके (स्वं) आपनू (आत्मानं) आत्माको (अथ) इस) पीछे (अद्वयः) द्वैतरहित (भवेत्) होवें ॥ २६ ॥

अनु०--यदि कहो कि सर्वज्ञ परमात्मा और अल्पज्ञ जीव को एक समझना विरुद्ध है तोइस्का उत्तर यह है जब जीव ब्रह्मकी जी अल्पज्ञ सर्वज्ञता इन्को त्याग चेतनमात्रको देखिये तो जीवब्रह्म एक है अथवा लक्षणाद्वारा और युक्तिद्वारा विचारकर्के देखिये जैसे जीवात्मा चिन्मयहै तैसे परमात्मा चिन्मय है तौभी चित्त अंशमै जीवात्मा परमात्मा एकही हैं तैसे ही आपने आपको चिन्मय जानकर अद्वय होवे ॥ २६ ॥

विषम०--लक्षणका लक्षणकहा काव्यप्रकाश द्वितीयोल्लासमे " मुख्यार्थबाधे तद्योगे रूढितोऽथप्रयोजनात् । अन्योर्थो लक्ष्यते यत् सा लक्षणारोपिता क्रिया ॥ १ ॥ अर्थ यह है कि जिस

स्थान मुख्य अर्थ ना वने उसस्थान मुख्य जो अर्थ है उस्को लेकर प्रसिद्धता (मशहूरी) से वा प्रयोजनसे (कार्य) जिस शक्ति और द्वारा अर्थ प्रतीत होवे उस शक्तिका नाम लक्षणाहै ॥ यथा—(यष्टयः प्रविशंति) कीसीने कहा की उस स्थान दंड (लाठी) प्रवेश होतेहै विचारना चाहिये कि दंड तो जड है कैसे प्रवेश होताहै नहि होता इस दंडका प्रवेशरूप मुख्य अर्थ नावना फिर दंडवाले पुरुष प्रवेशहोवेहै यह अर्थ लक्षणाद्वारा प्रतीतभया ॥ इसीका नाम लक्षणाहै ॥ २६ ॥

मू०—एकात्मकत्वाज्जहती न संभवेत्
तथाजहल्लक्षणता विरोधतः ॥
सोयंपदार्थाविव भागलक्षणा
युज्येत तत्त्वंपदयोरदोषतः ॥ २७ ॥

प०—(एकात्मकत्वात्) एकस्वरूप होनेसे (जहति) जहत्लक्षणा (न) नहि (संभवेत्) होसक्ति (तथा) तैसे(अजहत्लक्षणता) अजहत् लक्षणा (विरोधतः) विरोध होनसे (सोयंपदार्थौ) सो यह है पदार्थ (इव) न्याई (भागलक्षणा) त्याग लक्षणाकर्के (युज्येत) जोडे (तत्त्वंपदयोः) तत् त्वं इन्दोय पदोंको (अप्रदोषतः) विना दोषते ॥ २७ ॥

अनु०—इस श्लोकमे दो लक्षणा कहीहै एक जहत् दूसरी अजहत् सो जहत् स्वार्था लक्षणा उस्को करतेहै कि जैसे कोई कहे कि गंगामे वास करताहै तो इस कहणेसे समझा जावैहै कि यह गंगाके तटकेपर रहनेयोग्य स्थानमें वासकर

ता है क्यो किं जलप्रवाहमयीगंगामें वासकरनाअसंभवहै औ-
र अजहत् लक्षणाभी नाहि वनती क्यो कि जैसे कोई कहे कि
संपूर्ण काकसे दधि वचायो इस कहनेमें एकको दधि रक्षक
कहकर दूसरेको दधिनाशक कहे तो यहभी लक्षणा वनेनहि
किंतु काक विडाल आदिक सवसे दधिकी रक्षा प्रतीतहोती
हैइसलिये जीवात्मा और परमात्माकी एकता दोसे कहनीचा
हिये जैसे सोई यह देवदत्त है इहां (तत्ता) (इदंता) त्या
गके एक देवदत्त प्रतीतकरना येही लक्षणा निर्दोष है जीवात्मा
से जीव उपाधि औरपरमात्मासे परम उपाधि को दूरकर देखे
तो आत्मामात्र रहजाताहै इस निर्दोषलक्षणासे जीवात्मा औ
र परमात्माका ऐक्य ज्ञान प्राप्त होताहै यहि निर्दोष लक्षणा
कहलातीहै ॥ २७ ॥

विषमपद०—इस श्लोकमे परमात्मा श्रीरामचंद्रजीने जहतलक्षणा और अजहतलक्षणा दो भेद लक्षणाके कहेहै । उस्का लक्षण लिखतेहै ॥ काव्यप्रकाश । द्वि०उ०(स्वसिद्ध्ये पराक्षेपः परार्थेस्वमसमर्पणं २ उपादानं लक्षणंचेत्युक्ता शुद्धैवसाद्विधा) अर्थ यह है कि मुख्य अर्थकी सिद्धिवास्ते लक्ष्य अर्थके बोधनमे मुख्य अर्थके ग्रहण करनेसे उपादान लक्षणा होतीहै उदाहरण जैसे (नूपुर शब्द कर्तेहै) इहा नूपरवाले नट. भट. वेश्या आदि चेतन्यवाले पुरुषोंका ज्ञान होताहै । उस्का उपादान लक्षणा अर्थात् अजहत्स्वार्था लक्षणा कहते है ॥ जो मुख्य अर्थको त्याग पर अर्थको कहै सो लक्षणलक्षणा होतीहैजैसे कोई जैसे शत्रूको कहे (कि तुमने बहुत उपकार किया वडीभारी मैत्री दिखाई। (अब फिर ऐसा करता सुख से १०० वर्ष जीव) यह वात शत्रुमें घटती नाहे की-

शत्रुसे कब भला होताहै इसलिये उपकाररूप जो मुख्य अर्थ की बाधा भई फिर जहत्लक्षणासे अपकारादिकोंका अतिशय अर्थ मालूम होताहै। (कि हे दुष्ट तुमने बहुत भारीदुष्टता दिखाई ।अब तुम इसीक्षणोंमे मर ऐसे कामकर्ता) इत्यादि उलटी प्रतीतिको जहल्लक्षणा करतीहै इसलिये जहतत्स्वार्था कहलातीहै ॥ २७ ॥ अलमति गाहावगाहेन ॥

मू०रसादिपञ्चीकृतभूतसंभवं
भोगालयं दुःखसुखादिकर्मणाम् ॥
शरीरमाद्यं तव चादिकर्मजं
मायामयं स्थूलमुपाधिमात्मनः ॥ २८ ॥

प०-(रसादिपंचीकृतभूतसंभवं) रसासे लेकर जो पांच भूत तीनसे बनाहुआ (भोगालयं) भोगोंका घर (दुःखसुखादि कमर्णां) दुःखसुखादिकर्मका (शरीरं) स्थूल शरीर (आद्यंतवत्) आदिअंतवाला (आदिकर्मजं) संचितकर्मोंसेउत्पन्नभया (मायामयं) मायावाला (स्थूलं) बडा (उपाधिं) उपाधि (आत्मनः) आत्माकी ॥ २८ ॥

अनु०-पृथिवी है आदि जिनके ऐसे जो पांच भूत अर्थात् पृथिवी जल अग्नि वायु आकाश इन पांचोभूतोंसे बनाहुआ यह स्थूल शरीर सुखदुःखादिकर्मोंके भोगनेका घरहै उत्पत्ति नाशवालाहै पूर्वकर्मसे उत्पन्नभयाहै मायाका विकाररूप है यह शरीर आत्माकी स्थूल उपाधिहै ॥ पंचीकर्णकी व्यवस्थाऐसे है प्रथम पांचभूतोंके दो २ भाग कर्ने फिर एक

भाग भूतोंका जुदाधरे दूसरे भागके चार२भाग करे अपने प्रथम अर्धभागको त्यागके दूसरे चारोंभूतोंके अर्धभाग मै यह चारो छोटे भाग मिलावे इसतरा पांचोंमे पाचोंके मिलनेसे पंचीकर्ण होवैहै इस्का प्रकार अच्छीतरह तत्वबोध मे लिखाहै ॥ २८ ॥

वि०—उपाधीका लक्षण कहतेहै यथा " साध्यस्य व्यापको यस्तु हेतोरव्यापकस्तथा स उपाधिः ॥ " साध्यव्यापकत्वे सति हेतोरव्यापकत्वमुपाधेर्लक्षणं यथा ध्वंसो विनाशी जन्यत्वात् ध्वंस नाशवालाहै उत्पन्न होनेसे इहा होना यह उपाधि नहिं विनाशिको प्राक् अभाव होनेसे ॥ २८ ॥

मू०—सूक्ष्मं मनोबुद्धिदशेंद्रियैर्युतं
प्राणैरपंचीकृतभूतसंभवं ॥
भोक्तुःसुखादेरनुसाधनं भवे-
च्छरीरमन्यद्विदुरात्मनो बुधाः ॥ २९ ॥

पद०—(सूक्ष्मं) सूक्ष्मशरीर (मनोबुद्धिदशेंद्रियैर्युतं) मन और बुद्धि और दशइंद्रियोंकरके मिलाहूया (प्राणैः) प्राणोंकरकें मिलाभया (अपंचीकृतभूतसंभवं) अपंचीकृतभूतोंसे बना हुआ (भोक्तुः) भोगनेका (सुखादेः) सुखदुःखादिकोंके (अनुसाधनं) साधन (भवेत्) होताहै (शरीरं) देह (अन्यत्) दूसरा (विदुः) जानतेहै (बुधाः) बुद्धिवान् ॥ २९ ॥

अनु०—मन और बुद्धि दश इंद्रिय प्राणसे मिलाभया अपंचीकृत पांचोभूतोंसे बनाभयाहै स्थूलशरीरमे भोगोके भोग

नेवाला सूक्ष्मशरीर कहावेहैं इसको लिंगशरीरभी कहतहै यह शरीर (सतारह) तत्वोंका बनाहै इस्के वियोगकी मरण कहतेहै नेत्रादिकोंका विषय ना होनेसे सूक्ष्म कहलाताहै और स्थूलशरीरसे भिन्नहै ॥ संकल्परूप मन निश्चयकर्नेवाली बुद्धि नासिका १ जिव्हा २ नेत्र ३ त्वचा ४ कर्ण५ यह पांच ज्ञानेंद्रिया है ॥ वाणी १ हाथ २ चरण ३ गुहा ४ लिंग ५ यह कर्मेंद्रिया है ॥ प्राण अपान व्यान उदान समान यह पांच प्राणहै ॥ २९ ॥

वि०—प्रथम शरीरके भेद लिखतेहै ॥ सांख्यतत्वकौमुद्याम् ॥ " सूक्ष्मा १ मातापितृजा २ सहप्रभूतै ३ स्त्रिधा विशेषाः स्युः । सूक्ष्मास्तेषां नियता मातापितृजो निवर्तन्ते ॥" अर्थ—सूक्ष्म १ मातापितासंबंधि२ पंचभूतसंबंधि३ तीन प्रकारका तनु है (तिन्मे सूक्ष्म सदा रहताहै और मातापिताका तथा पंचभूतोंसे उत्पन्नभया शरीर नष्टहोताहै इहा तनुशब्दकी अपेक्षासे सूक्ष्मा यह स्त्रीलिंग पढाहै ॥ " स्त्रियां मूर्तिस्तनुस्तनूः ' इत्यमरः ॥ सूक्ष्म होनेसे लिंगशरीर कहलाताहै ॥ शंकाहैकि लिंगशरीरविना स्थूलके किछ नहि रहताहै उत्तर—तसवीर जैसे विना कागज वृक्ष विना जैसे छाया नहि रहती इसप्रकार विना स्थूल शरीरके सूक्ष्म अर्थात् लिंगशरीर नहि रहताहै ॥(बुद्धिलक्षण "अध्यवसायो बुद्धिः॥" मनलक्षण "सुखादिग्राहकं मनः)" " मनोग्राह्यं सुखं दुःखमिच्छा द्वेषोमतिः कृतिः ॥ इति मुक्तावल्यां ॥ दशइंद्रियोमे प्रमाण यथा— " बुद्धींद्रियाणि चक्षुः श्रोत्रघ्राणरसत्वगाख्यानि ॥ वाक्पाणिपादपायूपस्थानि कर्मेंद्रियाण्याहुः॥" इति सांख्यतत्त्वकोमुद्यां ॥ प्राणोंके भेद (प्राणोपानः समानश्चोदानव्यानौ च वायवः— ' इत्यमरः । अथ—प्राणादि वायु किस २ स्थानमें रहतेहै ॥ उत्तर-नासिका हृदय नाभि

पाद्का अंगुष्ठमें वर्तनेवाला प्राणहै ॥ गलके पीच्छे पृष्ठमे पादमे गुदामें लिंगमें पार्श्वोंमें वर्तनेवाला अपानहै ॥ हृदय नाभीके मध्यमे सर्वसंधियोंमे वर्तनेवाला समान वायुहै १ हृत् कंठ तालुमस्तक भ्रू (भ्रूकुटे) मध्य वर्तनेवाला उदानेहै ४ सर्वशरीरमें वर्तनेवाला व्यान वायुहै ५ यह पांच भेदहै ॥

मू०–अनाद्यनिर्वाच्यमपीह कारणं
मायाप्रधानं तु परं शरीरकम् ॥
उपाधिभेदात्तु यतः पृथक्स्थितं
स्वात्मानमात्मन्यवधारयेत् क्रमात् ॥ ३० ॥

पद०(अनादि) जिसका आदि नहि (अनिर्वाच्य) जो कहानेमे ना आवे (अपि निश्चयकर्के) इह (इसशरीरमें) कारणं कारणदेह (माया) ब्रह्मकि मायाशक्ति (प्रधानं) प्रकृति (तु) फेर (परं शरीरकं) ईश्वरकाशरीर (उपाधिभेदात्) उपाधिके भेदसे (तु) फिर (यतः) जिसकारणतें (पृथक्) भिन्न (स्थितं) स्थितहै (स्व) आपने (आत्मानं) आत्माको (आत्मनि) परमात्मामें (अवधारयेत्) धारणकरे (क्रमात्) क्रमसें ॥ ३० ॥

अनु०–प्रथम दोश्लोकों मे जीवके सूक्ष्म स्थूल दोशरीर कह अब तीसरा कारणशरीर कहते है जो उपाधिसे है कैसा है अनादि सत् असत् किसी प्रकारसे कहनेयोग्य नहि वह शरीर मायारूप अर्थात् ईश्वरस्वरूप सर्वसंपादक और स्थूल सूक्ष्म शरीरका कारण और आत्माका मुख्यशरीर मायारूप

कहलाताहै इसलिये इस मायाकृत उपाधिको त्यागकरके क्रम से श्रवण मनन निदिध्यासनके द्वारा ब्रह्म जीवमें भेद बुद्धिको दूरकर परमात्मामें अभेदजाने ॥ ३० ॥

विषमप० आत्मान मात्मन्यवधारयेत् क्रमात् । इसमें श्रुतिः "आत्मा वा अरे द्रष्टव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" इति– कैसे श्रवणादिक करने चाहिये–यथा "श्रोतव्यः श्रुतिवाक्येभ्यो मंतव्यश्चोपपत्तिभिः । मत्वा च सततं ध्येय एते दर्शनहेतवः ॥" इति ॥ ३० ॥

मू०कोशेषु पंचस्वपि तत्तदाकृति
विभाति संगात्स्फटिकोऽमलो यथा॥
असंगरूपोऽयमजोऽद्वयो यतो
विज्ञायतेऽस्मिन्परितो विचारिते ॥ ३१ ॥

प०–(कोशेषु) कोशोमें (पंचसु) पांचोंमें (अपि) निश्चय करके (तत्तदाकृतिः) तिस २ स्वरूपवाला (विभाति) प्रकाशहोताहै (संगात्) संगसे (स्फटिकः) विलोर (अमलः) निर्मल (यथा) जैसे (असंगरूपः) नहिंहै संगवाला रूप जिस्का (अयं) यह आत्मा (अजः) जन्मरहित (अद्वयः) द्वितीयरहित (यतः) जिससे (विज्ञायते) जानाजाताहै (अस्मिन्) इस महा वाक्यमें (परितः) चारोऔरते (विचारिते) विचारकियेसे ॥ ३१ ॥

अनु०–यह आत्मा पंचकोशोमें जिस२के साथ संगकरता है तिस२कोशका स्वरूपहो दिखाईदेताहै जैसे शुद्ध विलौर

जिस२रंगके पुष्पादिकोंके साथ युक्त होताहैं तिस२रंगवाला प्रतीत होताहै वास्तवसे आत्मा संगरहित जन्मरहित अद्वय अर्थात् जिसके साथका ना होवेहै इसलिये तत्त्वमसि इस महावाक्यसे विचाराजाताहै॥ पंचकोश कहतेहै अन्नमय १ प्राणमय २ मनोमय ३ विज्ञानमय ४ आनंदमय ५ स्थूलदेहको अन्नमय १ पंचकर्मेंद्रिय और मनको मनोमयको २ पंचज्ञानेंद्रिय और बुद्धिको विज्ञानमय ३ पंचप्राणको प्राणमय ४ कारणशरीरभूत अविद्यामलिनसत्वप्रधान और प्रिय मोद प्रमोद इन तीनोवृत्तियोंसहित आनंदमय कोश कहतेहै ॥ ३२ ॥

विषम०—कोशो विषे भिन्न२ प्रतीतिमे प्रमाण "कुसुमवच्च मणेः" मणिमें कुसुमो की न्याई ॥ "तमेवानु वदति तास्मिंश्चिद्दर्पणे स्फारे समस्ता वस्तुदृष्टयः । इमास्ताः प्रतिबिंबंति सरसीव तटद्रुमाः ॥" इति ॥ अर्थ तिस चित्तरूपी दर्पणमें संपूर्ण वस्तु प्रतीतहोती है जैसे जलमें तटके वृक्ष अनेक दिखाई देते है वास्तवसे जलमें नहिं इसतरह येह जगत् चैतन्यमें दिखाई देता है मायासे यथार्थतासे चैतन्य शुद्धहै इस हेतुसे असंग अज अद्वय है "असंगोयं पुरुषः" सांख्यप्रवचनमें लिखाहै ॥ श्रुतिभीकहतीहै । यथा "अणोरणीयान्महतो महीयानात्माऽस्य जन्तोर्निहितो गुहायां । तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुःप्रसादान्महिमानमात्मनः॥" यजु कठ० ह. मं २० ॥ तथाच

"अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसन्नित्यमगन्धवच्च यत् । अनाद्यनंतन्महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥" य० कं० ह. तृ० मं १५ ॥ ३१ ॥

मू०बुद्धेस्त्रिधा वृत्तिरपीह दृश्यते

स्वप्नादिभेदेन गुणत्रयात्मनः ।
अन्योऽन्यतोऽस्मिन्व्यभिचारतो मृषा
नित्ये परे ब्रह्मणि केवले शिवे ॥ ३२ ॥

प०—(बुद्धेः) बुद्धिकी (त्रिधावृत्तिः) तीनप्रकारकी अवस्था (अपि) निश्चयकरके (इह) इस आत्मामें (दृश्यते) दिखाईदेतीहै (स्वप्नादिभेदेन) स्वप्नादिभेदकर्के (गुणत्रयात्मनः) तीनगुणवाली बुद्धिहै (अन्योऽन्यतः) एकको दूसरेते (अस्मिन्) इस आत्मामें (व्यभिचारतः) विरुद्ध होनेसे(मृषा) झूठा है (नित्ये) नित्यमें (परे) गुणत्रयातीतविषे (शिवे) आनंदरूपाविषें ॥ ३२ ॥

अनु०—यह जो जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तीन अवस्था दिखाई देती है सो सत्व रज तम गुणवाली बुद्धिका धर्म है आत्माका नहि स्वत्वका जाग्रत् रजका स्वप्न तमका सुषुप्ति धर्म है इसलिये साक्षीस्वरूप निर्गुण आत्माको इन तीनो अवस्थावाला मानना मिथ्या है क्योंकि जाग्रत अवस्थामें स्वप्न सुषुप्तिका नाश स्वप्नमें जाग्रत सुषप्तिका नाश सुषुप्तिमें जाग्रत स्वप्नका नाशहै इस हेतुसे उत्पत्तिनाशरहित तीनोगुणोंसे परे सर्वव्यापक असंगरूप आनंदमय सर्वदा एकरस आत्मामै परस्पर व्यभिचारी धर्म इनतीनोका असंभवहै ॥ ३२ ॥

विषम० कहाभीहै. “जाग्रत स्वप्नं सुषुप्तं च गुणतो बुद्धिवृत्तयः । तासां विलक्षणो जीवः साक्षित्वेन व्यवस्थितः ॥ ” इति “ सत्वं

रजस्तम इति प्राकृतं तु गुणत्रयं। एतन्मयी च प्रकृति र्माया या वैष्णवी श्रुता ॥ ”

मू०—देहेंद्रियप्राणमनश्चिदात्मनां
संगादजस्रं परिवर्तते धियः॥
वृत्तिस्तमोमूलतयाऽज्ञलक्षणा
यावद्भवेत्तावदसौ भवोद्भवः॥ ३३ ॥

पद० (देह) स्थूल शरीर (इंद्रिय) दश (प्राण) वायु (मनः) मन (चिदात्मनां) चेतन आत्माके (संगात्) संगसे (अजस्रं) निरंतर (परिवर्तते) वर्तमानहोताहै (धियः) बुद्धिका (वृत्तिस्तमोमूलतया) बुद्धिकी वृत्ति अज्ञानरूप (अज्ञलक्षणा) अज्ञानलक्षणावाली (यावत्) जबतक (असौ) इसको (भवः) संसार (उद्भवः) उत्पत्तिहै ॥ ३३ ॥

अनु०—शरीर इंद्रिय प्राण मन चिदात्मा इन सर्वको जबतक आपसमें संबंधहै तबतक इस जीवको जन्ममरण होता है क्यों कि रजतमोप्रधाना बुद्धि संसारका कारण है इस्का त्याग ही योग्य है ॥ ३३ ॥)

विषमपद० यथा “ रजसा तमसा चैवं समाविष्टो भ्रमन्निह। भावैरनिष्टैः संयुक्तः संसारं प्रतिपद्यते ॥ अविद्यामाहुरव्यक्तं सर्गप्रलयधर्मिणम् ॥ सर्गप्रलयनिर्मुक्तं विद्यां वै पांचाविंशकम् ॥ ” अर्थात रजतमप्रधाना अज्ञान रूपा बुद्धि जन्ममरणमें हेतु। और सत्वप्रधाना ज्ञान रूपा बुद्धि मोक्षका कारण है ॥ इति ॥३३॥ ”

मू०नेति प्रमाणेन निराकृताखिलो

हृदा समास्वादितचिद्घनामृतः॥
त्यजेदशेषं जगदात्तसद्रसम्
पीत्वा यथाम्भःप्रजहाति तत्फलं ॥ ३४ ॥

पद०(नेतिप्रमाणेन) नेति प्रमाणकरके (निराकृतः) दूरकियाहुआ (अखिलः) संसार (हृदा) मनकर (सं) अच्छी तरह (आस्वादित) चखयाहै अर्थात् स्वादलीनाहै (चिद्घनामृतः) आत्मरूपी अमृत (त्यजेत्) त्यागदेवे (अशेषं जगत्) सर्वजगतको (आत्तसद्रसं) ग्रहणकीया है रस जिससे (पीत्वा) पानकरके (यथा) जैसे (अंभः) जल (प्रजहाति) त्यागदेताहै (तत्फलं) तिसके फलको ॥३४॥

अनु०-महावाक्यके अनुसार जो करना चाहिये उस्को कहतेहै कि इस जगतको मिथ्यारूप जानकर सत्वगुणयुक्त मनके द्वारा चिद्घनामृत अर्थात् ब्रह्मसुखको पानकर देह इंद्रियादि और संपूर्ण जगत् को त्यागदेवे और उदासीन रहै यदि कहो कि देह इंद्रियादिद्वारा जगत्का ज्ञान हुआ फिर किऊकर इन्द्रियादि जगत्को त्यागे इस्मे दृष्टांत यह है कि जिस प्रकारसे तृषावाला पुरुष नारकेल और नारंगि आदि फलके बीचका मीठा जल जो सारभूत है उस्को पानकर जैसे फिर नारकेल आदिक जो शेष वस्तु है उसको त्यागताहै तैसे इस संपूर्ण दृश्यरूप जगतके सारांश ब्रह्मको जानकर शेष निःसार वस्तुको त्यागदेवे ॥ ३४ ॥

विषमपद०श्रुतियथा-अथात आदेशो नेति नेति नह्येतस्मादिति

नेत्य न्यत् परमस्ति स एष आत्मा नेति नेती" त्यादि ॥ तथाच॥ "अस्थिस्थूणं स्नायुयुतं मांसशोणितलेपनं । चर्मावनद्धं दुर्गन्धिपूर्णं मूत्रपुरीषयोः ॥ जराशोकसमाविष्टं रोगायतनमनातुरम् । रजस्वलमसान्निष्ठं भूतावासमिमं सजेत् ॥ नदीकूलं यथा वृक्षो वृक्षं वा शकुनिर्यथा । तथा त्यजन्निमं देहं कृच्छ्राद्ग्राहाद्विमुच्यते" ॥ ३४ ॥

मू०—कदाचिदात्मा न मृतो न जायते
न क्षीयते नापि विवर्द्धते नवः ।
निरस्तसर्वातिशयः सुखात्मकः
स्वयं प्रभुःसर्वगतोऽयमद्वयः ॥ ३५॥

पद०(कदाचित्) कभी (आत्मा) ब्रह्म (न) नहि (मृतः) मरताहै (न) नहि (जायते) जन्मताहै (न) नहि (क्षीयते) घटताहै (न) नहि (अपि) निश्चयसे (विवर्द्धते) बढताहै (नवः) नवीनहै (निरस्तसर्वातिशयः) सबसे बडाहै (सुखात्मकः) सुखस्वरूपहै (स्वयंप्रभुः) स्वयंप्रकाशहै सब वस्तुमे (अयं) आत्मा (अद्वयः) अद्वयहै ॥ ३५ ॥

अनु०—यह आत्मा न कभी मरता ना जन्मता ना घटता ना बढता न कृश होता न मोटा होताहै एकरसरहताहै सब से बडा है सुखस्वरूप है स्वयंप्रकाश है सर्व वस्तुमे व्याप्तहै अद्वितीय है अर्थात् जिसके साथ का दूसरा नाहि ॥ ३५ ॥

विषमपद० श्रुतिप्रमाणं "न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् । अजो नित्यः शाश्वतो ऽयम्पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ १८ ॥

हंता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम् । उभौ तौ न विजानीतौ नायं हन्ति न हन्यते॥१९॥ ”य०कठ.उप० तृतीया वल्ली॥३५॥

मूलं०एवंविधे ज्ञानमये सुखात्मके
कथं भवो दुःखमयःप्रतीयते ॥
अज्ञानताध्यासवशात्प्रकाशते
ज्ञाने विलीयेत विरोधतःक्षणात् ॥ ३६ ॥

पद० (एवंविधे) इसप्रकासे (ज्ञानमये) ज्ञानस्वरूप (सुखात्मके) सुखरूप (कथं) कैसे (भवः) संसार (दुःखमयः) दुःखरूप (प्रतीयते) प्रतीतिहोताहै (अज्ञान) अज्ञानसे (अध्यासवशात्) अध्यासके वशसे (प्रकाशते) प्रगटहोताहै (ज्ञाने) ज्ञानसे (विलीयेत) दूरहोताहै (क्षणात्) एकक्षणसे ॥३६॥

अनु०—इसप्रकार विकाररहित और ज्ञानरूप सुखस्वरूप आत्मामेजन्ममरणादि संसारका दुःख किसीप्रकार नहि होसक्ता यह केवल अज्ञानके आधीन हुए अंतःकरणमें अहंममताबुद्धि उत्पन्नहोतीहै मनके द्वारा कल्पनामात्र है और बुद्धि भ्रममात्र है इसवास्ते अज्ञानविरोधी ज्ञानके उत्पन्नहो ऐसे कारणभूत अज्ञानका नाश होगा जब कारणका नाश भया तो जो कार्य संसार है उसकाभी नाश होगा जैसे भ्रमसे रज्जूमें सर्पज्ञान था जब प्रकृति रज्जूका ज्ञान हुआ तब तत्काल ही सर्पके होनेकी बुद्धिका नाश होताहै इसीप्रकार जान लेवै ॥ ३६ ॥

विषमपद० इहा ज्ञानमय इस पदसे ज्ञान क्या है यह प्रतीति होवेहै । ज्ञानकालक्षण इसलिये लिखतेहै (यथा-) " अव्यक्ताद्यविशेषान्ते विकारेऽस्मिंश्च वर्णिते । चेतनाचेतनान्यत्वज्ञानेन ज्ञानमुच्यते ॥ " अर्थ अव्यक्तसे विशेषपर्यंतमै जो चेतन अचेतनाका अभेद है वह ज्ञानहै अब जिसप्रकार आत्मा कर्ता अकर्ता है वह कहते है ॥ " निरिच्छे संस्थिते रत्ने यथा लोहः प्रवर्त्तते । सत्तामात्रेण देवेन तथा चायं जगज्जनः ॥ अत आत्मनि कर्तृत्वमकर्तृत्वं च संस्थितम् । निरिच्छत्वादकर्तासौ कर्ता सन्निधिमात्रतः ॥" अर्थ। जैसे इच्छारहित चमकपत्थरमे लोहा प्राप्तहोता है । तेसे जगत सत्तामात्रसे देवमे है । इसलिये कर्ता और अकर्ता है । निरिच्छासे अकर्ता और समीपतासे कर्ता है ॥ ३६ ॥

मूलं० यदन्यदन्यत्र विभाव्यते भ्रमा
दध्यासमित्याहुरमुं विपश्चितः ।
असर्परूपे हि विभावनं यथा
रज्ज्वादिके तद्वदपीश्वरे जगत् ॥ ३७ ॥

पद०(यत्) जो (अन्यत्) और पदार्थ (अन्यत्र) और पदार्थमें (विभाव्यते) प्रतीतहोताहै (भ्रमात्) भ्रमसे (अध्यासमित्याहुः) अध्यास ऐसे कहतेहै (अमुं) इसकू (विपश्चितः) बुद्धिमान (असर्परूपे) नासर्पमें (अहि) सर्पकी(विभावनं) भावना (यथा) जैसे (रज्ज्वादिके) रज्वादिकामैं (तद्वत्) तिसकी न्याई (अपि) निश्चयसे (जगत्) संसार है ॥ ३७ ॥

अनु०–भ्रमके आधीन हो अन्य वस्तुमै जो अन्यवस्तु

का ज्ञान उस्को अध्यास कहतेहै जैसे रज्जुमें सर्पज्ञान तैसे ईश्वरमें देहादिसंसाररूप ज्ञान होवेहै सो यह अध्यास केवल आत्मज्ञानके अभाव होनेसे असत्यमें सत्यका ज्ञान होताहै ॥ ३७ ॥

वि० शुक्तिकायां रजतम् । अर्थात् सिप्पिमें भ्रमसे रजतकी भ्रांतिकी न्याई ईश्वरमें जगत है ॥ अर्थात् प्रतिबिंबरूपसे है जैसे दर्पणमें मुख ॥ ३७ ॥

मूल०विकल्पमायारहिते चिदात्मके
ऽहंकार एषःप्रथमःप्रकल्पितः ॥
अध्यास एवात्मनि सर्वकारणे
निरामये ब्रह्मणि केवले परे ॥ ३८ ॥

पद०(विकल्पमायारहिते) मायाकि कल्पनासे रहित(चिदात्मके) चेतनमें (अहंकार एषः) एक अहंकार (प्रथम) पहिला (प्रकल्पितः) कहाहै (अध्यास एव) वह अध्यास भी है (आत्मनि) आत्मामें (सर्वकारणे) सर्वके कारणमें (निरामये) नीरोगमें (ब्रह्मणि) व्यापकमें (केवले) शुद्धमें (परे) परमें ॥ ३८ ॥

अनु०—आत्मामें जो जगत्का ज्ञान होताहै सो अध्यास मात्र है सर्वविकल्पका कारण जो माया तिसके संगसे रहित ज्ञानस्वरूप सर्वकाकारण आनंदमय विकारशून्य व्यापक जो आत्माहै उस आत्मासे प्रथम अहंकारकल्पना भया उस्को अध्यास कहतेहै वोह सर्वसंसारका कारण जानो ॥ ३८ ॥

विषमपद०विकल्पके भेद कहतेहै "(अष्टविकल्पो दैवस्तैर्य्यग्योनश्च पंचधा भवति । मानुष्य श्चैकाविधः समासतो भौतिकः सर्गः॥" अर्थ ब्राह्म १ प्राजापत्य २ ऐंद्र ३ पैत्र्य४गांन्धर्व ५ याक्ष ६ राक्षस७ पैशाच ८ ये है अष्ट प्रकारकी देव सृष्टि है ॥ और पशु १ मृग २ पक्षि ३ सर्प ४ स्थावर ५ ये है तिर्य्यक्सृष्टिहै ॥ और मानुष्य १ एक प्रकारकी सृष्टिहै यद्यपि ब्राह्मणादि बहुत भेद है तथापि इहा एक मनुष्य व्यक्ति लई जाती है ॥ ३८ ॥

मू०इच्छादिरागादिसुखादिधर्मकाः
सदा धियः संश्रुतिहेतवः परे ॥
यस्मात् प्रसुप्तौ तदभावतः परः
सुखस्वरूपेण विभाव्यते हि नः॥ ३९ ॥

पद०(इच्छादि) इच्छासे आदिले (रागादि) प्रीतिसे आदिले (सुखादि) सुखसे आदिले (धर्मकाः) धर्म (सदा) सदैव (धियः) बुद्धिके है (संसृति हेतवः) जन्मका कारण (परे) परमात्माविषे (यस्मात्) जिसकारणसे (प्रसुप्तौ) सुषुप्तिविषे (तत्) तिसबुद्धिके (अभावतः) ना होनेसे (परः) परमात्मा (सुखस्वरूपेण) सुखरूपकरके (विभाव्यते) प्रतीतिहोवेहै (हि) निश्चयसे (नः) हमको ॥ ३९ ॥

अनु०–सर्वसाक्षी आत्मासे जो संसारकी कल्पना है सो केवल ईच्छा उपेक्षा राग द्वेष सुख दुःख आदिक द्वंद्वधर्मवाली बुद्धीहि है अर्थात् इसप्रकारकी बुद्धिके होतेही संसारका अनुभव होताहै जब इसप्रकारकी बुद्धिसे रहित होताहै तब

संसारका नाश होजाताहै जैसे सुषुप्तिकालमें बुद्धिके अभाव होनेसे आत्मा सुखरूप प्रतीति होताहै और संसार दुःखरूपी कुछभी नहि प्रतीतहोता क्यों कि निद्रासे उठकर यह जानाजाताहै कि हम सुखसे शयनकर्तेथे वह शयन आत्माके तुल्य सुखरूप निश्चय होताहै इससे जानाजाताहै कि संसार केवल बुद्धिके धर्मसे है आत्माका यह धर्म नहिं ॥ ३९ ॥

विषमपद० ऊक्तं च " सुषुप्तावस्थया चक्रपद्मरेखा शिलोदरे । यथास्थिता चितेरन्तस्तथेयं जगदावली ॥ " (तत्सन्निधानादाधिष्ठातृत्वं च मणिवत्) अर्थ जैसे अयस्कान्त मणिकी समीपतासे शल्यका निकलना स्वतः सिद्ध है तद्वत् आत्मामें इच्छादिकोंसे संसार है ॥ ३९ ॥

मू० अनाद्यविद्योद्भवबुद्धिबिंबितो
जीवः प्रकाशो य इतीर्यते चितः ॥
आत्मा धियःसाक्षितया पृथक् स्थितो
बुद्ध्या परिच्छिन्नपरः स एव हि ॥ ४०

पद०(अनादि) आदिरहित (अविद्या) मायासे (उद्भव) उत्पन्नभया (बुद्धिबिंबितः) बुद्धिकी छाया (जीवः) जीवात्मा(प्रकाशः)प्रकाशरूप (अयं) यह आत्मा (इति) ऐसे)(ईर्यते) कथनकियाजावेहै (चितः) चितरूपहै (आत्मा) परमात्मा (धियः) बुद्धिका (साक्षितया) साक्षिहोनेसे (पृथक्) भिन्न (स्थितः) स्थितहै (बुद्ध्यापरिच्छिन्न) बुद्धिके धर्मोंसे रहित (परः) सर्वसे परे (तत्) सोआत्मा (एव हि) निश्चयकरके ॥ ४० ॥

अनु०—अनादिअज्ञानसे प्रगटभया जो बुद्धिमें प्रतिबिंबित चैतन्यका प्रकाश उस्को जीव कहते है बुद्ध्यधिष्ठान चैतन्यका अर्थात् जिससे बुद्धिकल्पित है वह वृत्तिका साक्षी होकर पृथक् स्थित है सो बुद्धिकर्के अपरिच्छिन्न है अर्थात् बुद्धिगुणोंसे उस्का आच्छादन नहिंहोताहै ॥ ४० ॥

विषम० भिन्नतामै प्रमाण " अभिन्नोपि हि बुध्यात्मा विपर्यास निदर्शनैः । ग्राह्यग्राहकसंवित्तिभेदवानिव लक्ष्यते ।" इति ॥ अर्थ आभिन्नभी आत्मा बुद्धिके संशयाविपर्यास भेदोंसे भेदवाला मालूम होताहै जैसे यह ग्राह्य है और यह ग्राहकहै ॥ ४० ॥

मू०चिद्बिंबसाक्ष्यात्मधियां प्रसंगत-
स्त्वेकत्र वासादनलाक्तलोहवत् ॥
अन्योन्यमध्यासवशात् प्रतीयते
जडाजडत्वं च चिदात्मचेतसोः ॥ ४१ ॥

पद०(चिद्बिंब) चिदात्माका बिंब (स) साथ (अक्षि) इंद्रिय (आत्म) परमात्मा (धियां) बुधिके प्रसंगसे (तु) फिर (एकत्र वासात्) एकस्थान वासहोनेसे (अनल) अग्नि (आक्त) युक्त (लोह) लोहा (वत्) न्याई (अन्योऽन्यं) परस्पर (अध्यासवशात्) अध्यासवशसे (प्रतीयते) प्रतीतिहोताहै (जड) अचेतन (अजडत्वं) चेतनता (चिदात्म) चेतन (अचेतसः) जडका ॥ ४१ ॥

अनु०—चित्प्रतिबिंब अधिष्ठान चित्बुद्धि इनके अभेद अर्थात् एकाकारग्रहणसे बुद्धि पुरुषके धर्म परस्परमें आरोप

ण करीदेहै कर्तृत्वादिरूप बुद्धिके धर्म आत्मामें इसकी चेतनता बुद्धिमें आरोपणकरीहै जैसे तप्तलोहेमें प्रकाशकत्व दाहकत्वादि अग्निके धर्म आरोपण कियेजातेहै ॥ ४१ ॥

विषमप०—सुगमहै ॥ ४१ ॥

मूल०—गुरोःसकाशादपि वेदवाक्यतः
संजातविद्याऽनुभवो निरीक्ष्यते।
स्वात्मानमात्मस्थमुपाधिवर्जितं
त्यजेदशेषं जडमात्मगोचरम् ॥४२॥

पद०—(गुरोःसकाशात्) गुरुद्वारा (अपि) निश्चयकर (वेदवाक्यतः) वेदवाक्यसे (संजात) उत्पन्नभया (विद्या) ज्ञान (अनुभवः) स्वयंसिद्ध ज्ञान (निरीक्ष्यते) मालूमहोता है (स्व) अपने (आत्मानं) आत्माको (आत्मस्थं) परमात्माविषे स्थितको (उपाधिवर्जितं) नामादिउपाधिरहितको (त्यजेत्) त्यागदेवे (अशेषं) संपूर्णको (जडं) जडपदार्थको (आत्मगोचरं) इंद्रियोंके विषयको ॥ ४२ ॥

अनु०—गुरुमुखसे और वेदवाक्यसे श्रवण मनन कर फिर तद्द्वारा ज्ञानरूप आत्माका अनुभव कर अर्थात् निदिध्यासन करके उस ज्ञानानंदस्वरूप और नामरूपादिउपाधिराहित अपने आत्माको आपने हृदयमें स्थितहुयेको देखे अर्थात् अपरोक्ष संपूर्ण जडपदार्थ यो यह दृश्यरूप जगत् है इस्को त्याग करे आत्मसत्तासे भिन्न सत्ताशून्य समझे ॥ ४२ ॥

विषमपद०—गुरुद्वारा ब्रह्मज्ञानकी प्राप्तीमें श्रुति प्रमाण है अथर्वेद मुंडक उप० १ मुंडक ॥ ("परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान् ब्रह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन । तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत् समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् " ४२ ॥

मूलं—प्रकाशरूपोहमजोहमद्वयो
सकृद्विभातोहमतीव निर्मलः ।
विशुद्धविज्ञानघनो निरामयः
संपूर्ण आनंदमयोहमक्रियः ॥ ४३ ॥

पद०(प्रकाशरूपः) प्रकाशरूप है (अहं) मै (अजः) जन्मसे रहित (अहं) मै (अद्वयः) जिस्के साथ का नहि (असकृद्विभागतः) बहुत प्रकाशरूप हो (अहं) मैं (अतीवनिर्मलः) अतिशय शुद्धहै (विशुद्धविज्ञानघनः) बहुत शुद्धचैतन्य एकरस स्वरूपहै (निरामयः) रोगरहितहैं (संपूर्ण आनंदमयः) संपूर्ण आनंदरूपहै (अहं) मै (अक्रियः) कर्तृत्वादिअभिमानरहित है ॥ ४३ ॥

अनु०—जिस स्वरूपसे आपने आपको जानना चाहिये स्को दो श्लोकमें कहतेहैं मै स्वयंप्रकाशरूप हूं घटादिकोंकी ई सजातीय विजातीय स्वगत भेदत्रय शून्यहूं अर्थात् में औरप्रकाशकी इच्छा नहिरखता एसाहूं हूं कर्ता भोक्ता आदि अभिमानसे रहितहूं और संपूर्ण देश काल वस्तुकी सीमासे रहित आनंदस्वरूप हूं हित हूं ॥ ४३ ॥

विषमपद०–"अजोनित्यः शाश्वतोऽयंपुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे" इत्यादि श्रुति प्रमाण है ॥ पीछे निरूपणभी कराहै ॥

मू०–सदैव मुक्तोहमचिन्त्यशक्तिमा
नतीन्द्रियज्ञानमविक्रियात्मकः ।
अनंतपारोहमहर्निशं बुधै-
र्विभावितोहं हृदि वेदवादिभिः ॥ ४४ ॥

पद०–(सदा) नित्य (एव) निश्चय (मुक्तः) जन्मादिदुःखरहित (अहं) मै (अचिंत्यशक्तिमान्) अचिंतशक्तिवाला आत्मारूप (अतींद्रिय) इंद्रियोंके विषयसे परे (ज्ञानं) ज्ञानरूप (अविक्रियात्मकः) विकारहीन (अनंतपारः) नही है पार जिस्का (अहं) हम (अहर्निशं) दिनरात (बुधैः) बुद्धिवानोंने (विभावतः) भावना करीताहै (अहं) मै (हृदि) हृदयमें (वेदवादिभिः) वेदवादियोंने ॥ ४४ ॥

अनु०–मै सदा मुक्तहूं अर्थात् भूतभविष्यत्वर्तमान इन तीनों कालोसे मुक्त हूं सर्वधर्मरहित हूं और अचिंत्यशक्तिवाला आत्मारूप और इंद्रियोंके विषयसे परे अर्थात् मन वाणिसे परे सर्वविकारोंमे रहितहूं और अनंतपार हूं अर्थात् जिसका पार नहीं ऐसाहूं और वेदवादी पंडितजन अपने हृदयसे रात्रिदिन भावना करतेहै सो ज्ञानस्वरूप परमात्मा मैं हुं॥४४

वि०-यथा–"यत्तदृश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुः श्रोत्रं तदपाणिपादं नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनिं परिपश्यंति धीराः॥" अथर्ववेद मुण्डक उपनि० प्रथमखंड मं०॥ इत्यादि ॥४४

मूल०--एवं सदात्मानमखंडितात्मना
विचारमाणस्य विशुद्धभावना।
हन्यादविद्यामचिरेण कारकै
रसायनं यद्वदुपासितं रुजः॥ ४५॥

पद०--(एवं) ऐसे (सदा) नित्य (आत्मानं) आत्माका (अखंडित) एकरस (आत्मना) आत्माकर्के (विचारमाणस्य) विचारवालेकी (विशुद्धभावना) बहुतशुद्धभावनासे (हन्यात्) दूरकर्ताहै (अज्ञ) अज्ञानको (अचिरेण) शीघ्रही (कारकैः) देहांतरकर्मोंके सहित (रसायनं) औषधीभेद (यद्वत्) जैसे (उपासितं) सेवनकिया (रुजः) रोग॥ ४५॥

अनु०--ऊपर दो श्लोकोंमें कहीहुई भावनाका फल कहते हैं इस प्रकार सदा आत्माको एकरस भावना करता जो विचारवान् पुरुष है सो अपने अज्ञानको मायाके कर्मोंसहित दूरकर्ताहै जैसे सिद्ध औषधीसेवनकर्नेसे रोग नष्ट हो जाताहै॥ ४५॥

विष०--अखंडितात्मा अर्थात् हर्षशोकादिकोंसें रहित एकरस है आत्मा जिसका॥ ४५॥

मूल०--विविक्त आसीन उपारतेंद्रियो
विनिर्जितात्मा विमलांतराशयः।
विभावयेदेवमनन्यसाधनो

विज्ञानदृक् केवल आत्मसंस्थितः ॥ ४६ ॥

पद०—(विविक्त) एकांत (आसीन) स्थित (उपारतेंद्रियः) इंद्रियोंके अर्थसे उपशम (विनिर्जितात्मा) जीतलीयाहै अपना आपजिसने (विमल)निर्मल (अंतराशयः)अंतःकरणका आशय (विभावयेत्) भावनाकरे (एवं) ऐसे (अनन्यसाधनः) छोडदि सब साधन (विज्ञानदृक्) ज्ञानदृष्टिवाला (केवल) एक (आत्मसंस्थितः) आत्मामें स्थितहै ॥ ४६ ॥

अनु०--अब ध्यानका वर्णन कर्तेहैं कि निर्जनस्थानमें वैठें योगशास्त्रकी रीतिसे पद्मासन लगाय इंद्रियोंको वश्यमें कर मायाका नाश कर प्राणके द्वारा अंतःकरणको वशीभूत करके शुद्धमनसे ज्ञानमात्र दृष्टि राखे और जगा न जानेदे अथवा दृश्यरूप इस जगत् और समस्त विषयोंसे रहित अर्थात् निर्विकल्पसमाधिसे युक्त हो मुक्तिसाधन तत्वज्ञान विन और कोई साधन नहि इस प्रकार निश्चयकर संगरहित आत्मामें सर्वकी समाप्ति जाने ॥

विषमपद० इस श्लोकमें (आसीनपदको लैकर पद्मासनसे वैठे) एसे श्रीरामजी पंडितमहात्माओनेटीकामेंलिखा ॥ अब योगशास्त्रके अनुसार पद्मासनको कहतेहै कि यथा शिवसंहिता योगप्रकरण-तृतीयपटलमें लिखाहै ॥ यथा—

" उत्तानौ चरणौ कृत्वा ऊरुसंस्थौ प्रयत्नतः ।
ऊरुमध्ये तथोत्तानौ पाणी कृत्वा तु तादृशौ ॥ १ ॥
नासाग्रे विन्यसेद्दृष्टिं दंतमूलं च जिह्वया ।
उत्तोल्य चिबुकं वीक्ष्य उत्थाप्य पवनं शनैः ॥ २ ॥

यथाशक्त्या पश्चात्तु रेचयेदविरोधितः ।
इदं पद्मासनं प्रोक्तं सर्वव्याधिविनाशनम् ॥ ३ ॥
यह पद्मासन कहाहै इस्को समाधिमें उपयोगि कहतेहैं पातंजलदर्शन साधनपाद. सूत्र ४६ " तत्र स्थिरसुखमासनम् । " अर्थ पद्मासन दण्डासन स्वस्तिकासन इत्यादिकोंके लगानेसे शरीर स्थिर और निष्कंप होता तो ध्यान शुद्ध होताहै ॥ ४६ ॥

मू०–विश्वं यदेतत्परमात्मदर्शनं
विलापयेदात्मनि सर्वकारणे ॥
पूर्णश्चिदानन्दमयोऽवतिष्ठते
न वेद बाह्यं न च किंचिदांतरं ॥ ४७ ॥

पद०–(विश्वं) जगत् (यत्) जो (एतत्) इतना (परमात्मदर्शनं) परमात्मरूप (विलापयेत्) लयकरे (आत्मनि) आत्माविषे (सर्वकारणे) सर्वजगतके कारणमें (पूर्णचिदानंदमयः) पूर्णचेतन आनंदरूप (अवतिष्ठते) शेष रहिताहै (न) नहीं वेद जानताहै (बाह्यं) बाहिर (न) नही (च) और (किंचित्) थोडा (अंतर) भेद ॥ ४७ ॥

अनु०–ध्यानके अनंतर जो करनाचाहिये सो कहतेहै । यह जो जगत् दिखाई देताहै सो सब परमात्मारूप है इस जगतको परमात्मा मै लयकरे अर्थात् जैसे उत्पत्तिक्रमसे आत्मासे जगत् उत्पन्नहुआहै उसी प्रकार आत्मामें लयकर जो विचारकर देखे तो केवल पूर्ण आनंदरूप आत्माही रहजाताहै ना कुछ आत्मासे बाहिर वह फिर योगी ना कुछअंतरकी वस्तु जानताहै ॥ ४७ ॥

वि०–सर्वत्र, आत्मदर्शन होना चाहिये ॥ ४७ ॥

मू०–पूर्वं समाधेरखिलं विचिंतये-
दोंकारमात्रं सचराचरं जगत् ॥
तदेव वाच्यं प्रणवो हि वाचको
विभाव्यते ज्ञानवशान्न बोधतः ॥ ४८ ॥

पद०–(पूर्वं) पहिले (समाधेः) समाधिके (अखिलं) संपूर्ण जगत् (विचिंतयेत्) चिंतनकरे (ॐकारमात्रं) ॐकारस्वरूप (सचराचरं जगत्) जडचेतनरूप जगतको (तत्) सोई (एव) निश्चयकर्के (वाच्यं) जाननेयोग्य (प्रणवः) ॐकार (हि) जिसकारणसे (वाचकः) बोधकरानेवाला (विभाव्यते) जाणीताहै (अज्ञानवशात्) अज्ञानके वशसे (न) नहि (बोधतः) ज्ञानसे ॥ ४८ ॥

अनु०–समाधिसे पहिले संपूर्ण जगतको मायोपहित ब्रह्म रूप जानकर अर्थात् सर्वं खल्विदं ब्रह्म इस चिंतनको करे इस्का वाचक ॐकारहै ईश्वरवाच्यहै इत्यादिविचारभी बोधसे पूर्वकालमें होसक्तीहै ॥ ४८ ॥

विषमपद०–परमात्मा श्रीरामचंद्रजी (समाधीसे प्रथम चराचर जगतको ॐकाररूप जाने) ॐकार वाचक है ब्रह्म वाच्यहै ऐसे कहतेभये अब उन्के आशयको लै ओंकारमै सर्वजगतकी उत्पत्तिमै बुद्धिअनुसार कहतेहै कि (ॐम्) अ १ उ २ म् ३ इन तीनोको ॐ कहतेहै अर्थात् सत्व रज तम इनके ऐक्यताको ॐ कहतेहै सत्वप्रधान विष्णु १ रजप्रधान ब्रह्मा २ तमप्रधान शिव ३ प्रगटभये अथ

इन्से जै सृष्टिकी उत्पत्ती है वह कहतेहै कि सत्व रज तम इन्की साम्याअवस्थाको प्रकृति अर्थात् माया कहतेहै प्रकृतिसे महत् अर्थात् महत्तत्वभयो महत्से अहंकार उत्पन्न भयो अहंकारसे पंचतन्मात्रा उत्पन्नभई अर्थात् शब्द १ स्पर्श २ रूप ३ रस ४ गंध ५ इन पंचतन्मात्रासे दश इन्द्रिया अर्थात् नेत्र १ कर्ण २ नासिका ३ रसना ४ त्वचा ५ वाणी १ हाथ २ पाद ३ गुदा ४ लिंग ५ इन दश इन्द्रिया भई ॥ पांच तन्मात्रसे पंच भूत भये जैसे शब्द तन्मात्रसे शब्दका गुण आकाश शब्दतन्मात्राके साथ स्पर्शतन्मात्रसे वायु शब्द स्पर्शतन्मात्रके साथ रूपतन्मात्रसे तेज शब्दस्पर्शरूपका गुणभया पीछे शब्दस्पर्शरूपतन्मात्रकेसहित रसतन्मात्रसे जल शब्दस्पर्शरूपरसका गुण भया फिर शब्दस्पर्शरूपरसतन्मात्रासहित गंधतन्मात्रासे पृथिवी-शब्दस्पर्शरूपरसगंधका गुण भई यह पांचभूत भये और उभयात्मक मन और कार्यकारणका विलंबी आत्मा ॥ यह सर्वसृष्टि सत्व रज तम अकार उकार मकारमें अंतरगतहै इन तीनोको कहतेहैं ॥ इसलिये समाधिमें ओंकारका जप और उस्का ज्ञान उपकारक है जैसे योगशास्त्रमें लिखाहै कि "तस्य वाचकः प्रणवः" तिस परमात्माका वाचक अर्थात् कहनेवाला प्रणव है इस हेतुसे ओंकारके ज्ञानकी आवश्यकता है यथा-" तज्जपस्तदर्थभावनम् " समाधिमें तिस ओंकारका जप और अर्थज्ञान-की भावना चाहिये ॥ और इसी आशयको लेकर छान्दोग्यउपनिषद्में लिखाहै कि " ओंकारपूर्वं हि योगोपासनं-यानि नित्यानि कर्म्माणि " इत्यादि श्रुतिस्मृतिविचारशास्त्रद्वारा ओंकारका जप अर्थ और सृष्टिका कारण कह अब ओंकारका परमोत्कृष्ट माहात्म्य श्रुतिविहित लिखतेहै ॥ अथर्ववेदीयप्रश्नोपनिषत् पंचमप्रश्नेमथा- "अथहैनं शैब्यः सत्यकामः पप्रच्छ । स यो ह वै तद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोंकारमभिध्यायीत । कतमंवाव स तेन लोकं जयतीति ॥ १ ॥

तस्मै स होवाच एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्म यदोङ्कार-स्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति ॥ २ ॥

स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्याम-भिसम्पद्यते । तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्य्ये-ण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति ॥ ३ ॥

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीय-ते । स सोमलोकं स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्तते ॥ ४ ॥

यः पुनरेतन्त्रिमात्रेणैवोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्य्ये सम्पन्नः । यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः सामामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं स एतस्मा-ज्जीवघनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते तदेतौ श्लोकौ भवतः॥ ५ ॥

तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योऽन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक् प्रयुक्तासु न कम्पते ज्ञः ६

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं स सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते । त-मोङ्कारेणैव वायतनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं पर-ञ्चेति ॥ ७ ॥ इति पञ्चमः प्रश्नः ” ॥ ओम् प्लुत उच्चारण करना चाहिये ॥ ४८ ॥

मू०--अकारसंज्ञः पुरुषो हि विश्वको
ह्युकारकस्तैजस ईर्यते क्रमात् ॥
प्राज्ञो मकारः परिपठ्यतेऽखिलैः
समाधिपूर्वं न तु तत्त्वतो भवेत् ॥ ४९ ॥

पद०--(अकारसंज्ञः) अकारहै नाम जिसका (पुरुषः)पुरु षहै (विश्वकः) विश्व है नाम जिस्का (हि) निश्चयसे (उ कारकः) उकारहै नाम जिसका (तैजसः) तैजसनामवाला

(ईर्यते) कहाजाताहै (क्रमात्) क्रमसें (प्राज्ञः) प्राज्ञना महै (मकारः) मकार है नाम जिसका (परि) चारोंऔरसे (पठ्यते) पढीताहै (अखिलैः) संपूर्णलोकोंने (समाधिपूर्वं) समाधिसेपहिले (नतु) नहि (तत्वतः) वास्तवसे (भवेत्) होवैहै ॥ ४९ ॥

अनु०—अब प्रणवका अर्थ विस्तारसे कहतेहै कि अकारसंज्ञाका वाच्य वह पुरुषहै जो जाग्रतअवस्थाका साक्षी विश्व नामसे विराट कहाजावेहै और उकारके प्रतिपादनकर्नेवाला पुरुषका तैजसहै जो स्वप्नावस्थाका साक्षी लिंगदेहाभिमानी हिरण्यगर्भ है और मकारके वाच्य पुरुषका नाम प्राज्ञ है जो सुषुप्तिअवस्थाका साक्षी है और कारणदेहका अभिमानी है इसप्रकारकी भावना समाधीके पहिले रखणी चाहिये और जब साक्षात्कार ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होजावे तब सर्वको ब्रह्म स्वरूप देखें ॥ ४९ ॥

विषमपद० " सत्वाज्जागरणं विद्याद्रजसा स्वप्नमादिशेत् । प्रस्वापनं तु तमसा तुरीयं त्रिषु संततम् ॥ " इति (समाधिपूर्व) समाधिके पूर्व, अथ समाधि क्या है इस शंकाका उत्तर "समाधिश्चित्तवृत्तिनिरोधः" चित्तकी जो वृत्ति राग द्वेष काम क्रोधादि उनसे निवृत्तकर जो मनको एकभावनामें स्थितकरना वह समाधि कहलातीहै ॥ ४९ ॥

मू०--विश्वं त्वकारं पुरुषं विलापये-
दुकारमध्ये बहुधा व्यवस्थितं ॥

ततो मकारे प्रविलाप्य तैजसं
द्वितीयवर्णं प्रणवस्य चांतिमे ॥ ५० ॥

पद०(विश्वं) विश्वकूं (तु) फिर (अहंकारं) अहंकारको (पुरुषं) पुरुषको (विलापयेत्) लयकरे (उकारमध्ये) उकारके बीच (बहुधा) बहुतप्रकारका (व्यवस्थितं) स्थितको (ततः) तिस्के पीछे (मकारे) मकारमें (प्रविलाप्य) लय करे (तैजसं) तैजसकूं (द्वितियवर्णं) द्वितीयअक्षरको (प्रणणवस्य) ॐकारके (अंतिमे) अंतके वर्णमें ॥ ५० ॥

मू०--मकारमप्यात्मनि चिद्घने परे
विलापयेत् प्राज्ञमपीह कारणं ॥
सोऽहं परब्रह्म सदा विमुक्तिम-
द्विज्ञानदृङ् मुक्तमुपाधितोऽमलः ॥ ५१ ॥

पद० (मकारं) मकारको (अपि) निश्चयकर्के (प्रविलाप्य) लयकरे (तैजसं) तैजसकू (अपि) निश्चयकर्के (आत्मनि) आत्मामें (चिद्घने) चिदघनमें (परे) परात्मामें (विलापयेत्) लयकरे (प्राज्ञं) प्राज्ञको (अपीह) निश्चयसे इहां (कारणं) कारणको (सः) सो आत्मा (अहं) मेहूं (परब्रह्म) परब्रह्मको (सदा) सदैव (विमुक्तिमत्) मुक्तिवाला (विज्ञानदृक्) विज्ञानदृष्टिवाला (मुक्त) छुटाहुआ (उपाधितः) उपाधिसे (अमलः) शुद्धहै ॥ ५१ ॥

अनु० ॥ इन दोनो श्लोकोंमें लयका प्रकार कहतेहैं स्थूल

शरीरमें भोगाभिमानीरूप जो विश्वपुरुष स्थित है उस्को और उस्के वाचक अकारको उकारमें लीनकी भावना करे और लिंगदेहाभिमानी पुरुष तैजस उस्के वाचक उकारको जिसमें विश्व पुरुष लीन हुआहै मकारमें लयकरे और कारणशरीरा भिमानी प्राज्ञको और उस्के वाचक मकारको जिस्मे विश्व और तैजस दोनो लयहुएहै ज्ञानस्वरूप आत्मामें लय होनेकी भावना कर अपनेको संपूर्णके लयकरनेका अधिष्ठाता और नित्यमुक्त परब्रह्मका स्वरूप जाने ॥ शंका--यदि कहो कि अहंपदार्थको जो रागद्वेषादिसे मलीन होरहाहै उस्मे ब्रह्मकी भावना कैसे होसक्तीहै ॥ उत्तर--अहं सर्व उपाधि अर्थात् मायादिसे निर्मल और सर्वदा ब्रह्मसाक्षात्कार साधनकर्नेके योग्य है इसलिये ऐसी भावना करनी उचितहै ॥५०॥ ॥ ५१ ॥

विषमपद० (विमुक्तिमत्) इस शब्द को ले मुक्तिका अर्थ कहते हैं, कि (मुच) धातुसे " स्त्रियां क्तिन् " सूत्रसे क्तिन्प्रत्यय है ॥) अर्थ 'मुच्यते कर्मबंधनात्, इति मुक्तिः पाप पुण्यरूप कर्मोंसे अत्यंत निवृत्तिको मुक्ति कहतेहै ॥ १० ॥ ५१ ॥

मू०--एवं सदा जातपरात्मभावनः
स्वानंदतुष्टः परिविस्मृताखिलः ॥
आस्ते स नित्यात्मसुखः प्रकाशकः
साक्षाद्विमुक्तोचलवारिसिंधुवत् ॥ ५२ ॥

पद०(एवं) ऐसे (सदा) नित्य (जात) उत्पन्नहुई (परात्म भावना) परमात्माकी भावना (स्व) आपने (आनंद) आनं

दकर्के (तुष्टः) प्रसन्न (परि) चारोंओरते (विस्मृतः) भुला-दिया (अखिलः) सर्व (जगत्) संसार (आस्ते) स्थितहोताहै (सः) सो पुरुष (नित्य) सदा (आत्मसुखः) आत्माके सुख-वाला (प्रकाशकः) स्वयंप्रकाश (साक्षात्) प्रत्यक्ष (विमुक्तः) छूटाहुआ (अचल) स्थिर (वारि) जल (सिंधु) समुद्र (वत्) न्याई ॥ ५२ ॥

अनु०—पूर्वश्लोकानुसार भावनावालोंका लक्षण कहतेहैं इसप्रकार सर्वकालमें जिस पुरुषको परात्मभावना भई सो पुत्र स्त्री धन देहादिकोंको विस्मरण करताहुआ जो परिणाममें दुः-खदायक विषय हैं उन्को त्याग विरक्तहो स्वस्वरूपके आनं-दको प्राप्तहोताहै नाम रूप भेदसे रहित हो तरंगरहित समुद्रव-त् विषयसंबंधरूप लहरोंसे रहित हो स्थिर रहताहै॥५२॥

विष०—सुगमहै ॥ ५२ ॥

म०एवं सदाभ्यस्तसमाधियोगिनो
निवृत्तसर्वेन्द्रियगोचरस्य हि ॥
विनिर्जिताशेषरिपोरहं सदा
दृश्यो भवेयं जितषड्गुणात्मनः ॥५३॥

पद०(एवं) इसप्रकार (सदा) सदैव (अभ्यस्त) अभ्या-सकियाहै (समाधियोगिनः) समाधीवाले योगिको (निवृत्त) रहित (सर्व) संपूर्ण (इंद्रियगोचरस्य) इंद्रियोंके विषयोंको (हि) निश्चयसे (विनिर्जित) जीतलियाहै (षड्गुणात्मनः) छैगुणवाले आत्माको जिनोंने ॥ ५३ ॥

अनु०—इसप्रकार योगाभ्यासी पुरुष संपूर्ण इंद्रियोंको शब्द स्पर्श रूपरस गंध विषयोंसे निवृत्त कर तथा अंतःकरणके आश्रय जो क्रोध कामादि वह नाशकर समाधिसे युक्त हो आत्मदर्शन करताहै ॥ आत्माके छैगुण यह है सर्वज्ञत्व १ नित्यतृप्तत्व २ बोधस्वरूपत्व ३ नित्यत्व ४ अलिप्तत्व ५ अनंतरूपत्व ६ ॥ ५३

विषमपद० " जनयंत्यर्जने दुःखं तापयंति विपत्तिषु । मोहयंति च संपत्तौ कथमर्थाः सुखावहाः ॥१॥ " अर्थात्, अर्जनमें दुःख नाशमें संताप वृद्धिमे मदको धन देतेहै ज्ञानीके लिये कैसे धनादि सुखको प्राप्तिवाले हो, अर्थात् नही ॥ ५३ ॥

मू०ध्यात्वैवमात्मानमहर्निशं मुनि-
स्तिष्ठेत्सदा मुक्तसमस्तबंधनः ॥
प्रारब्धमश्नन्नभिमानवर्जितो
मय्येव साक्षात्प्रविलीयते ततः ॥ ५४ ॥

पद०(ध्यात्वा) ध्यानकर (एवं) इसप्रकार (आत्मानं) आत्माको (अहर्निशं) दिनरात (मुनिः) मननकर्नेवाला (तिष्ठेत्) स्थितहोवे (सदा) सदैव (मुक्तसमस्तबंधनः) छूटगयेहै सर्व बंधन जिसके (प्रारब्धमश्नन्) प्रारब्ध भोगताहुआ (अभिमानवर्जितः) अभिमानसे रहित (मयि) मेरेमै (एव) निश्चयसे (साक्षात्) प्रत्यक्ष (प्रविलीयते) लयहोताहै (अंततः) अंतकालमें ॥ ५४ ॥

अनु०—इसप्रकार योगी दिनरात्र आत्मध्यानमें तत्पर हु-

आ सर्वबंधनसे मुक्त प्रारब्ध भोगताहुआ आत्मामें लीनहोवेहै यदि दैववशसे जीवन्मुक्त अभिमानशून्य होकरकेभी विषय-भोग करे तौभी वह फिर उसी व्यक्तिसे हमारेमें लय हो जायगा ॥ ५४ ॥

वि० अर्थात् जो पुरुष विषयोंका त्याग समझकर दैववशसे अर्थात् आवश्यक कार्य खानपानादि वा पालनादिक करे उन्मे आसक्त न होवे अभिमान ना करे तो वहभी हमारेमें लय होजा-यगा ॥ आत्माका ध्यानकर्ना कहतेहै " असंभवति सर्वत्र दिग्भू-म्याकाशरूपिणि । प्रकाश्ये यादृशं रूपं प्रकाशस्यामलं भवेत् ॥ त्रिजगत् त्वमहं चेति दृश्ये सत्तामुपागते । द्रष्टुः स्यात् केवलोभाव-स्तादृशो विमलात्मनः ॥ ज्ञानं नैवात्मनो धर्मो न गुणो वा कथञ्च-न॥ ज्ञानस्वरूप एवात्मा नित्यः पूर्णः सदाशिवः॥ " इत्यादि॥५४॥

मू० आदौ च मध्ये च तथैव चांततो
भवं विदित्वा भयशोककारणं ॥
हित्वा समस्तं विधिवादचोदितं
भजेत् स्वमात्मानमथाखिलात्मनाम्॥५५॥

पद०(आदौ) आदिमें (च) फिर (मध्ये) मध्यमें (च) फिर (तथा) तैसे (एव) निश्चयसे (च) और (अंततः) अंतकालमें (भवं) संसारको (विदित्वा) जानकर (भयशो-ककारणं) भयशोकके हेतुको (हित्वा) त्यागकर (समस्तं संपूर्णको (विधिवादचोदितं) काम्यकर्मको (भजेत्) भजन करे (स्व) अपने (आत्मानं) आत्माको (अथ) इसते अनंतर (अखिलात्मना) सर्वात्माको ॥ ५५ ॥

अनु०--आदि मध्य अंत तीनो अवस्थामें दुःखका कारण अर्थात् आदिमें धनके इकठ्ठेकर्नेंसे मध्यमें रक्षाकर्नेंसे अंतमें नाशहोनेका चौरराजादिभयका जो कारण संसार है इस लिये समस्तकामनासहित कर्मोंका त्यागकर संपूर्ण जीवोंके स्वरूपात्मा परमेश्वरका भजनकरे क्योंकी यह धर्म सबधर्मोंसे उत्तमहै ॥ ५५ ॥

विषमपद०—उक्तञ्च "इज्याचारदमाऽहिंसा दानं स्वाध्यायकर्म च । अयं तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्॥" इति स्मृतौ । या० १ अध्याये ॥ " इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं धृतिः क्षमा ॥ अलोभ इति मार्गोयं धर्मस्याऽष्टविधः स्मृतः ॥" इति स्मरणात् ॥ और धन दुःखदाता कैसे है यथा " जनयंत्यर्जने दुःखं तापयंति विपत्तिषु । मोहयंति च संपत्तौ कथमर्थाः सुखावहाः ॥" इति॥५५

मू०आत्मन्यभेदेन विभावयन्निदं
भवत्यभेदेन मयात्मना तदा ॥
यथा जलं वारिनिधौ यथा पयः
क्षीरेवियद्व्योम्न्यनिले यथाऽनिलः॥ ५६ ॥

पद०(आत्मनि) आत्मामें (अभेदेन) अभेदकरके (विभावयन्) भावना करताहुआ (इदं) इसजगत्को (भवति) होताहै (अभेदेन) अभेदकर्के (मयात्मना) मेरा आत्मा (तदा) तब (यथा) जैसे (जलं) जल (वारिनिधौ) समुद्रमें (यथा) जैसे (पयः) दुग्ध (क्षीरे) दुग्धमें (वियत्) आकाश (व्योम्नि) आकाशमें जैसे (अनिलः) वायु ॥ ५६ ॥

अनु०—आत्मा सबका अधिष्ठाता अर्थात् आश्रयहै सोइ मेहू सो तुम हमारे और आपणे जीवस्वरूपमें जिसकाल अभेदभावना करोगे उसी क्षणमें जीव और परमेश्वरमें अभेद हो जावेगा जैसे संपूर्ण नदियोंका जल समुद्रमें जाकर समुद्र कहाताहै और भिन्न२रंगकी गौका दुग्ध मिलनेसे केवल दुग्ध कहाताहै घटाकाश महाकाशसे मिल महाकाश कहाताहै मशककी वायु महावायुसे मिल महावायु कहातीहै इसीप्रकार जीव ब्रह्मका अभेद होयेगा तो जीवही ब्रह्महै ॥ ५६ ॥

वि० "एक एव हि भूतात्मा भूते भूते व्यवस्थितः । एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचंद्रवत् ॥ नित्यः सर्वगतो ह्यात्मा कूटस्थो दोषवर्जितः । एकः स भिद्यते शक्त्या मायया न स्वभावतः ॥ अनेन प्रकारेणात्मन्यभेदः ॥" अर्थ एकही परमात्मा सर्वभूतोंमें व्यापकहै जलमें चंद्रमाकीन्याई जैसे घटोंमे बहुतचंद्रमा प्रतीत होतेहै वास्तवसे एकही है ॥ ५६ ॥

मू०इत्थं यदीक्षेत हि लोकसंस्थितो
जगन्मृषैवेति विभावयन्मुनिः ॥
निराकृतत्वाच्छ्रुतियुक्तिमानतो
यथेंदुभेदो दिशिदग्भ्रमादयः ॥ ५७ ॥

पद०(इत्थं) ऐसे (यत्) जो (ईक्षते) देखे (हि) निश्चयसे (लोकसंस्थितः) संसारकी व्यवस्था (जगत्) जगतको (मृषा) झूठ (एव) निश्चयकर्के (इति) ऐसे (विभाव-

यन्) भावनाकरता (मुनिः) मननकर्नेवाला (निराकृतत्वा-त्) असत्य होनेसे (श्रुति) वेद (युक्ति) प्रसिद्धयुक्ति (मा-नतः) प्रमाणसे (यथा) जैसे (इंदुभेदः) चंद्रमाका भेद अ-र्थात् दोप्रकारका देखना (दिशि) दिशामें (दिग्भ्रमादयः) दिशाका भ्रम ऐसेहि और भ्रम ॥ ५७ ॥

अनु०--तत्वज्ञानियोको जगत्के सत्य होनेका भ्रम जिस प्रकार अपने आप छुटजाताहै सो कहतेहै जीवन्मुक्त अवस्था-के प्राप्तहूयेसे लोकव्यवहारकर्म करताहुआ यह भावना करेहै कि जगत् मिथ्याहै और जीव और परमात्मा एकहीहै इस विचारके होनेसे जगतकी सत्य भावनाका नाश होताहै। जैसे चंद्रमाका यथार्थ ज्ञान होताहै तो चंद्र दोका भेद नष्ट होजा-ताहै ऐसी दिशाकाभी जो पुरुष भ्रमताहै उसको वृक्षादि सर्व पदार्थ भ्रमते मालुमहोतेहै जब बैठताहै तो सबका भ्रमणज्ञान हटता है श्रुति युक्ति दृष्टांतके अनुसार इन् भ्रमोंकीवत् जीव ब्रह्मका भेद नाशहोजाताहै ॥ ५७ ॥

वि०--श्रुतियुक्तिप्रमाणद्वारा जो सिद्ध है वह धर्म है " आर्षं धर्मोपदेशं च वेदशास्त्राविरोधिना । यस्तर्केणानुसंधत्ते स धर्मं वेद नेतरः ॥ " इति मनुः ॥ ५७ ॥

मू०--यावन्न पश्येदखिलं मदात्मकं
तावन्ममाराधनतत्परो भवेत् ॥
श्रद्धालुरत्यूर्जितभक्तिलक्षणो
यस्तस्य दृश्योहमहर्निशं हृदि ॥ ५८ ॥

पद०(यावत्) जबतक (न) नहि (पश्येत्) देखे (अखिलं जगत्) सर्वजगतको (मदात्मकं) मेरास्वरूप(तावत्) उतना काल (मम) मेरी (आराधन) सेवामें (तत्परः) तत्पर (भवेत्) होवे (श्रद्धालुः) श्रद्धावाला (अत्यूर्जित) बहुतवथा (भक्तिलक्षणः) भक्तिलक्षणवाला (यः) जोहै (तस्य) तिस्को (दृश्यः) दिखाईदेणेवाला (अहं) मै (अहर्निशं) दिनरात्र (हृदि) हृदयमें ॥ ५८ ॥

अनु०--जबतक इस पुरुषको सर्वजगत् मेरा स्वरूपदिखाई नादेवे तवतक मेरा आराधन मन लगाकर कर्तारहै जो पुरुष ऐसे श्रद्धावाला हो मेरी भक्ति करताहै उस्के दिन रात्र हृदय में दिखाइदेताहूं ॥ ५८ ॥

वि०--आशय यह है कि जिस पुरुषका चित्त पूर्वकर्मोंकर ना शुद्धहोवे और मेरा स्वरूप यथार्थतासे सर्व जगत् नादेखे फिर चित्तशुद्धिके लिये निष्कामकर्मोंसे मुझकी जो सगुणमूर्ति है उस्का ध्यान पूजनकरे प्रमाण. श्रु. य. वे. ४ अ. मं २ ॥ " कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतᳪ समाः । एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ॥ " अर्थ कि सर्व जगतमें ब्रह्ममय भावना ना होवे तो १०० वर्षतक निष्काम कर्म करे इसप्रकार तुमको मोक्ष होगा और तरासे नहि और निष्काम किये हुये दुष्कर्म तुमको नहि प्राप्तहोगें ॥ इस द्वारा सगुण निर्गुण दो प्रकारकी उपासना कहदी श्रीरामचंद्रजीने फिर सगुणउपासनाको अंतमे प्रगट करेगे ॥ इति ॥ ५८ ॥

मू०--रहस्यमेतच्छ्रुतिसारसंग्रहं

मयाविनिश्चित्य तवोदितं प्रियं।
यस्त्वेतदालोचयतीह बुद्धिमान्
स मुच्यते पातकराशिभिः क्षणात्॥ ५९ ॥

पद०(रहस्यं) गुह्यवार्ता (एतत्) यह (श्रुतिसारसंग्रहं) वेदोंके सारका संग्रह (मया) मैंने (विनिश्चित्य) बहुतनिश्चयकर (तव) तुमको (उदितं) कहाहै (प्रियं) श्रेष्ठ (यः) जो (एतत्)इस्को (आलोचयति) विचारताहै (सः) सो (मुच्यते) छूटजाताहै (पातकराशिभिः) पापोंके समूहसें (क्षणात्) क्षणमात्रसे ॥ ५९ ॥

अनु०--श्रीरामचंद्र भगवान लक्ष्मणसे कहतेहैं यह जो गोप्यवार्ता मैंने बहुत निश्चयकर तुमको कहीहै सो संपूर्ण वेदोंका साररूप है अर्थात् वेदोका सिद्धांतसंग्रह है जो पुरुष बुद्धिश्रेष्ठवाला इस्को विचारेगा वह पुरुष पापोंके समूहसे एक क्षणमैं छूटजावेगा ॥ ५९ ॥

विषमपद०--श्रीरामचंद्रजी वेदोंके सारको लक्ष्मणसे कहकर अंतमें ज्ञानका फल पापोंकी अत्यंत निवृत्ति कहतेहैं सो यजुर्वेद कठवल्ली उपनिषद्में लिखाहै । द्वितीया वल्लि यथा--

" एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतदेवाक्षरम्परं ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो गच्छति तस्य तत् ॥ १६ ॥
एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परं ।
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ १७ ॥
यस्त्वविज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः ।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते ॥ व. ४ । ॥ ८ ॥

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रहवान्नरः ।
सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥ ४१९ ॥"

मू०–भ्रातर्यदीदंपरिदृश्यते जग-
न्मायैव सर्वं परिहृत्य चेतसा।
मद्भावनाभावितशुद्धमानसः
सुखीभवानन्दमयो निरामयः॥ ६० ॥

पद०–(भ्रातः) हेभाई! (यत्) जो (इदं)यह (परि) चारों औरसे (दृश्यते) दीखताहै (जगत्) संसार (माया) मायाहै (एव) निश्च० (सर्वं) संपूर्णको (परिहृत्य) त्यागदेवे (चेतसा) चित्तकरके (मद्) मेरी (भावनाभावितशुद्धमानसः) भावनासे शुद्धमन हो (सुखीभव) सुखी हो (आनंदमयः) आनंदस्वरूप (निरामयः) रोगसें रहित ॥ ६० ॥

अनु०--श्रीरामचंद्रजी पूर्वकथनकी दृढता करनेवास्ते फिर ऐक्यता कहतेहै की हे भ्रातर! यह जो जगत् दिखाई देताहै सो केवल मायामात्र है इस्को त्याग अर्थात् उदासीन हो हमारी भावनाद्वारा अंतःकरणको शुद्ध करके संपूर्ण दुःखोंसे निवृत्त होकर सुखी आनंदरूप सर्वसंसारके रोगोंसे रहितहो ॥ ६० ॥

विषमपद०–अब फिर रामचंद्रजी लक्ष्मणजीको भ्रातृबुद्धिसे कहतेहै यदि तुम कहो कि पीछेभी भ्रातृबुद्धिसे कहा है तो इहा फिर पिष्टपेषणकी क्या जरूरत थी–आशय यहहै कि प्रथम गुरुभावनासे आत्मज्ञानको दृढकर अब भ्रातृवात्सल्यतासे प्रीतिवृद्धिके लिये

भ्रातर ! इस शब्दको कहकर कहतेहै । पीछे यह शब्द नहिकहा६०

मूल०--यःसेवते मामगुणं गुणात्परं
हृदा कदा वा यदि वा गुणात्मकं ।
सोऽयं स्वपादाञ्चितरेणुभिःस्पृश-
न्पुनाति लोकत्रितयं यथा रविः ॥ ६१ ॥

पद०--(यः) जो (सेवते) सेवना करताहै (मां) मुझको (अगुणं) गुणरहितको (गुणात्परं) गुणोंसे परेको (हृदा) हृदयकरके (कदा) कभी (वा) अथवा (गुणात्मकं) गुणात्माको (सः) सो (अयं) यह (स्व) अपने (पाद) चरणसे (अंचित) पूजीहुई (रेणुभिः) धूलिकरके (स्पृशन्) स्पर्श करताहुआ (पुनाति) पवित्रकरताहै (लोकत्रितयं) तीनलोकको (यथा) जैसे (रविः) सूर्य ॥ ६१ ॥

अनु०--जो कोई पुरुष शुद्धअंतःकरणसे मेरी सेवाकरता है निर्गुण जान अथवा गुणोंसे परे जान अथवा गुणवाला जानकर सो पुरुष अपने चर्णोंकी धूलीसे स्पर्श करताहुआ तीन लोकको पवित्रकरताहै जैसे सूर्यभगवान् जगतको पवित्रकरताहै ॥ ६१ ॥

विषमपद०--इहां सगुण निर्गुण दो उपासना कहीहै॥सगुण उपासना रामतापनी, गोपालतापनीउपनिषत और चारों वेदमें लिखी है " इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम् " इत्यादि । "नमो भवाय" " यो वै रामः स भगवान्"इत्यादि बहुत लिखाहै। विषमपदव्याख्या होनेसे नहि लिखेजाति ॥ ६१ ॥

मूल०--विज्ञानमेतदखिलं श्रुतिसारमेकं
वेदान्तवेद्यचरणेन मयैव गीतं ॥
यः श्रद्धया परिपठेद्गुरुभक्तियुक्तो
मद्रूपमेति यदि मद्वचनेषु भक्तिः ॥ ६२ ॥
इति श्रीसेतौ अध्यात्मरामायणे उत्तर-
काण्डे उमामहेश्वरसंवादे पंचमःसर्गः ॥ ५ ॥
॥ श्रीः ॥ शुभंश्रीः ॥ ॥छ॥ श्रीः ॥छ॥

पद०—(विज्ञानं) विज्ञानको (एतत्) इस (अखिलं) संपूर्णको (श्रुतिसारं) वेदके सारको (एकं) एकको (वेदांतवेद्यचरणेन) उपनिषदोंकर्के जाने जातेहैं चरण जिस्के (मया) मैंने (एव) निश्चयकरके (गीतं) कथनकीयोंको (यः) जो(श्रद्धया) श्रद्धाकरके (परिपठेत्) पढताहै (गुरुभक्तियुक्तः) गुरुकी भक्तिवाला (मद्रूपमेति) मुझके रूपको प्राप्तहोताहै (यदि) जब (मद्वचनेषु) मेरेवचनोंमै (भक्तिः) प्रीति ॥ ६२ ॥

अनु०—जो पुरुष इस हमारे कहेहुए संपूर्ण वेदोंके साररूप-विज्ञानको पढेगा सो कर्म क्याहै जगतका जन्मादि जो कहो कि केवल पाठमात्रसे इस प्रकारका महत्फल कैसे होवेगा तौ कहतेहैं कि जब हमारे वचनमें विश्वास करके गुरुके वाक्यको मानै और भक्तियुक्त होइ तो अवश्य उस फलको पावेगा ॥ इति—महापुरुषभक्तजनकरुणया तनुमनधनतःकृतार्थीकृतविश्वजनायुर्वेदसमुद्रात्सकलरसरत्नराशिनादायनिरामय

कृतसर्वनरगीयमानगुण (गुजराति) वंशालंकारचूडामणिभिषग्वरपंडितश्रीरामदासकृतरामगीतापदप्रकाशिकाटीकासमाप्तिमगात् ॥ शुभम् । शं । श्रीः ॥

प्रार्थना ॥

दोहा—सम्वत् विक्रमनृपति शुभ, खयुगांकभूमान १९२०।
श्रावणकृष्णएकादशी, बार सुधाकर जान ॥ १ ॥
द्विजगुरजरश्रीराम, करपूरस्थलनगरमैं ।
भाषातिलकललाम, कीयो रामगीताउपर ॥ २ ॥
मै निजमतिअनुसार, कियो तिलक यह ।
सज्जनलेहुसुधार, चूक परी जो होई जिह ॥ ३ ॥
रघुवरगीताकोतिलक, रघुवर ज्ञाननिधान ॥
पूर्ण भयो रघुवरकृपा, रह न सकलअज्ञान ॥ ४ ॥ इतिश्रीः ॥

विषमपद०—अंतश्लोकमें रामचंद्रजी ब्रह्मस्वरूप अपनेको कहतेहै किवेदांतकर जानेजातेहै चरण जिसके ऐसे मेने तुमारेको उपदेश किया जो पुरुष गुरुभक्तियुक्त पढे तो सो वोह मेरा स्वरूप होता है यदि मेरे वचनोमे भक्ति होवेसो यह वाक्य अधिकारीभेदसे कहाहै कि जैसा२अधिकारी तैसा२फल है प्रमाण सांख्यप्रवचनभाष्यमे लिखाहैं कि " अधिकारी त्रैविध्यात न नियमः" जो पुरुष गुरु परमेश्वरके वाक्य यथार्थ माने वह उत्तम जो गुरुकेही वचन माने वह मध्यम जो परमेश्वरके वाक्य अपने अनुमानके साथ माने वह अधम है इत्यादि भेदहै ॥ इस श्लोकमे वसंततिलका नाम छन्दहै (तल्लक्षणं) " उक्ता वसंततिलका तभजा जगौ गः॥ " अर्थ तगणऽऽ । भगणऽ ॥ जगणदो । ऽ । १ । ऽ । २ द्रय गुरुऽऽहोवे तो वसंततिलका नाम छंद होताहै ॥ इति—श्रीगौतमगोत्र (शोरि) अन्वयालंक-

तर्कपूरस्थलराजधानीनिवासिदैवज्ञढुनिचंद्रात्मजपण्डितविष्णुदत्तकृत विषमपदव्याख्या रसवेदांकचंद्रमिते वैक्रमे १९४६ पौषकृष्णनवम्यां सोमेसमाप्तिमगात् । शुभमस्तुअजामराचिंत्यरूपसगुणब्रह्मरामचंद्रप्रसादात् ॥ श्रीः श्रीः॥

वर्णनम् ।

यस्तर्कवादानखिलान्प्रचक्षे
योगौतमीयश्च महायशस्वी ।
तस्यान्वयालंकृतिरत्नजातो
दैवज्ञविद्वान्ढुनिचंद्रनामा ॥ १ ॥
भ्राता यस्य च लक्ष्मणः सुविमलाविख्यातकीर्तिर्यशः-
सेवाराधनपूजने च निपुणः श्रीरामचंद्रस्य यः॥
आज्ञायामपि सोदरस्य कुशलो जेष्ठस्य सौमित्रिवत्
ताभ्यां च प्रणिपत्य विष्णुदत्तः कुरुते च टीकांशुभाम्॥२॥ (?)
श्रीरामनाथगुरुपंकजपादरेणु-
मादाय मूर्ध्नि च वहूपममन्यमानः ।
स्वात्मानमप्यथ च वेदविदां वरिष्ठं
गोपालशास्त्रिसुगुरुं च मुहुः प्रणामः ॥ ३ ॥
हरिभक्तं महात्मानं शास्त्रिणं प्रणमाम्यहम् ।
यस्य संगात्समालब्धं ज्ञानं विज्ञानमेव च ॥ ४ ॥
मित्रं च साधुरामं च विष्णुदासं तथैव च ।
अन्यान् स्वाध्यायवर्गान् स्वान् नमस्कुर्मः पुनः पुनः ॥५॥
श्रीहरिः परमेश्वरो विजयतेतराम् ॥

इदं पुस्तकं गोविन्दशास्त्रिणा यथामति शोधितं मुंबय्यां श्रीकृष्णदासात्मजाभ्यां गंगाविष्णुखेमराजगुप्ताभ्यां स्वकीये"श्रीवेङ्कटेश्वर" नाम्निमुद्रणालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम्॥सं० १९४७